# एक शिक्षक की अनकही यात्रा

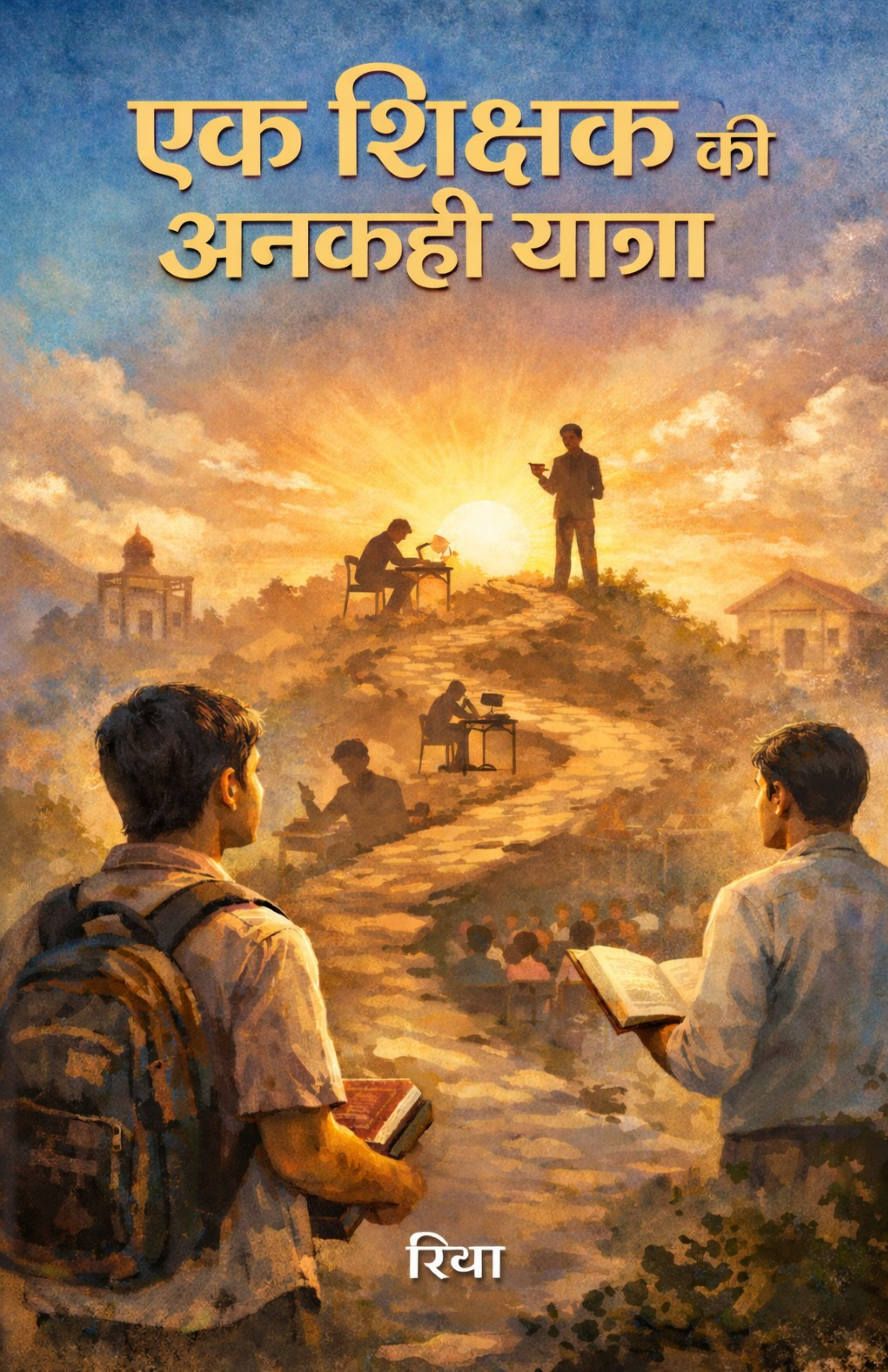

रिया

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्रथम
संस्करण: 2026

© संपादक: रिया
सर्वाधिकार सुरक्षित इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को संपादक की पूर्व अनुमति

के बिना पुन :
प्रकाशित
नहीं किया जा
सकता, न ही इसे
किसी डेटा
संग्रहण
प्रणाली में
रखा जा सकता
है। इसे किसी
भी रूप में —
चाहे वह
इलेक्ट्रॉनिक
हो , यांत्रिक ,

फोटोकॉपी हो या
रिकॉर्डिंग— किसी भी अन्य माध्यम से प्रेषित करना वर्जित है । इस पुस्तक में व्यक्त किए गए विचार और घटनाएँ
लेखकों के निजी अनुभव

हैं । इनका किसी भी सरकारी नीति या निर्णय से कोई संबंध नहीं है । पुस्तक में उपयोग किए गए नाम, पात्र, स्थान और घटनाएँ या तो लेखक की कल्पना का

परिणाम हैं या उन्हें
काल्पनिक रूप से प्रयोग किया गया है । संपादक का यह पूर्ण
विश्वास है कि इस पुस्तक की सामग्री किसी भी अन्य व्यक्ति या संस्था के

मौजूदा
कॉपीराइट का उल्लंघन नहीं करती है ।

भूमिका
शिक्षा केवल अक्षरों का ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन को गढ़ने की एक निरंतर
प्रक्रिया है। इस
प्रक्रिया के

केंद्र में होता है 'शिक्षक', जो स्वयं तपकर दूसरों के भविष्य को रोशन करता है। "एक शिक्षक की अनकही यात्रा" केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि उन अनुभवों,

संघर्षों और
भावुक क्षणों
का संकलन है ,
जो अक्सर
कक्षाओं की
दीवारों और
ब्लैकबोर्ड
की चाक के
पीछे अनकहे रह
जाते हैं।
एक शिक्षक की
यात्रा में
केवल

पाठ्यक्रम पूरा करना ही शामिल नहीं होता, बल्कि विद्यार्थियों के मन को समझना, उनकी शंकाओं को दूर करना और उन्हें एक बेहतर इंसान बनाना भी शामिल है । इस

संकलन के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि एक शिक्षक के जीवन में कितनी
चुनौतियाँ आती हैं और वह किस प्रकार समाज के प्रति अपने

उत्तरदायित्व
का निर्वहन
करता है ।
इन रचनाओं के
मध्यम से समाज
की उन
सच्चाइयों और
मानवीय
संवेदनाओं को
स्वर देती
हैं , जिनसे एक
शिक्षक का
रोज़ाना

सामना होता है
। कहीं ये
रचनाएँ
विद्यार्थियो
ं के साथ बने
आत्मीय
संबंधों की
बात करती हैं ,
तो कहीं उस
संतोष को
व्यक्त करती
हैं जो किसी
छात्र की

सफलता को देखकर मिलता है । यह संकलन उन सभी
शिक्षकों को समर्पित है जो शिक्षा को मात्र एक पेशा नहीं, बल्कि एक साधना मानते हैं। इन पृष्ठों के माध्यम से

पाठकों को यह अहसास होगा कि एक शिक्षक का व्यक्तित्व केवल पाठ्य-पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भावनाओं, संवेदनाओं और अटूट धैर्य का एक सागर है। आशा है कि यह

'अनकही यात्रा' हर पाठक के हृदय को छुएगी और शिक्षक के प्रति सम्मान की एक नई दृष्टि
प्रदान
करेगी।

अनुक्रमणि का
अध्याय 1 : पहली देहलीज़ — जहाँ से सब बदल गया... अध्याय 2 : कच्ची मिट्टी और मासूम सवाल...... अध्याय 3 : चॉक की धूल और

ब्लैकबोर्ड
के पीछे की
दुनिया .....
अध्याय 4 : वो
खास बच्चा और
उसकी अनकही
चुनौती ...
अध्याय 5 :
स्टाफ -रूम के
बंद दरवाज़ों
के पीछे ....
अध्याय 6 : वो
मोड़ , जहाँ

गुरु शिष्य बन
बैठा ....
अध्याय 7 :
बारिश की
बूंदें और
बचपन की
यादें ....
अध्याय 8 :
आखिरी घंटी और
घर की वो
दौड़ .....

अध्याय 9 : सफ़र अभी बाकी है ...
उपसंहार : ब्लैकबोर्ड के उस पार — अब मैं शिक्षक हूँ ..

अध्याय **1 :** पहली देहलीज़ — जहाँ से सब बदल गया

सूरज की एक जिद्दी किरण कमरे के पर्दे की दरार से छनकर सीधे मेरी आँखों पर पड़ रही थी। नींद के खुमार में मैंने करवट बदली और तकिए से मुँह छिपाने की कोशिश की, लेकिन वह चमक किसी सुनहरी

चुनौती की तरह मेरी पलकों पर टिकी रही । तभी, मेज़ पर रखे अलार्म की कर्कश आवाज़ ने कमरे का
सन्नाटा चीर दिया।
'ट्रिंग-
ट्रिंग-
ट्रिंग!' मैंने झटके से हाथ मारकर

अलार्म बंद
किया और अधखुली
आँखों से घड़ी
की ओर देखा।
'सात बज रहे थे
!'
सात  ? सात बज गए
?
मेरे शरीर में
जैसे बिजली का
एक करंट दौड़
गया। मैं
हड़बड़ाकर
बिस्तर से उठ

बैठा । आज कोई साधारण दिन नहीं था । आज वह दिन था जिसके लिए मैंने न जाने कितनी रातें जागकर पढ़ाई की थी। आज मेरी जॉइनिंग का पहला दिन था। बिस्तर से उतरते ही पैर फर्श पर फिसला, पर मैंने खुद

को संभाला। मन
ही मन खुद को
कोसने लगा ,
"पहला ही दिन और
पहली ही सुबह
ऐसी हड़बड़ाहट ?
शाबाश !"
बाथरूम की ओर
भागते हुए
मैंने आईने में
अपनी शक्ल देखी
। बाल बिखरे
हुए थे और
आँखों में नींद

से ज़्यादा घबराहट थी । ठंडे पानी के छपाकों ने जब चेहरे को छुआ, तब कहीं जाकर दिमाग की नसें खुलीं । तौलिए से मुँह पोंछते हुए मैंने खिड़की से बाहर देखा—शहर जाग चुका था, और आज उस शहर की भीड़

में मेरी एक नई
पहचान बनने
वाली थी । तभी
मेरे कानों में
माँ की आवाज़
गूँजी , जैसे वह
मुझे पुकार रही
हों। उनकी
आवाज़ में वही
चिर -परिचित
ममता थी , जिसने
बचपन से आज तक
मेरी हर सुबह
को सँवारा था ।

"बेटा , आकाश अब
बस भी कर ! सूरज
सिर पर आ गया है
और तू अभी तक
आईने से ही
बातें कर रहा
है ?" उनकी
आवाज़ रसोई से
आ रही थी , जहाँ
से ताज़े पराठों
और चाय की
सोंधी खुशबू ने
पूरे घर को

अपनी लपेट में ले लिया था । मैं
मुस्कुराते हुए बाहर निकला और मैंने देखा कि माँ मेरे लिए टेबल पर दही का कटोरा और नाश्ता सजा रही थीं । मुझे देखते ही उन्होंने अपनी साड़ी के पल्लू

से मेरे माथे का पसीना पोंछा और माथे पर एक छोटा सा तिलक लगा दिया । "आज से तेरा नया जीवन शुरू हो रहा है," उन्होंने धीमे से कहा, "डर मत, बस यह याद रखना कि तूने यहाँ तक

पहुँचने के लिए कितनी मेहनत की है ।" नाश्ता करके जब मैंने अपना बैग उठाया और मुख्य दरवाज़े की ओर कदम बढ़ाया, तो मेरे कदम अचानक से ठहर गए । सामने वही पुरानी लकड़ी की देहलीज़ थी जिसे मैं

हज़ारों बार पार
कर चुका था।
"वह अब महज़
लकड़ी नहीं थी
। उसे पार करने
का मतलब था —
अपने लड़कपन को
पीछे छोड़ना और
ज़िम्मेदारी
की दुनिया में
कदम रखना। "
जैसे ही मैंने
अपना दाहिना
पैर देहलीज के

बाहर निकाला ,
दिल की धड़कन
तेज़ हो गई ।
मैंने पीछे
मुदकर देखा तो
ऐसा लगा मानो
जैसे घर पीछे
छूट गया हो । वह
आँगन , वह
दीवारें और माँ
का वह
मुस्कुराता
चेहरा — सब कुछ
धुंधला सा लगने

लगा, जैसे मैं किसी पुरानी फिल्म के सीन से बाहर निकल रहा हूँ । माँ अभी भी दरवाज़े पर खड़ी थीं, उनकी आँखों में एक अजीब सी चमक थी — शायद खुशी के आँसू, या शायद यह सुकून कि उनका बच्चा अब बड़ा हो गया

है । मैंने एक
लंबी साँस भरी
और अपनी
हथेलियों को
आपस में रगड़ा
। बाहर की हवा
में सुबह की
वही ताजगी थी ,
लेकिन आज वह
कुछ अलग महसूस
हो रही थी ।
सड़क पर
दूधवाले की
साइकिल की घंटी

और दूर कहीं मंदिर से आती शंख की ध्वनि आज सब कुछ एक नए सुर में बज रहा था ।
जैसे ही मैंने गली के मोड़ पर कदम रखा, मेरे मन की घबराहट धीरे-धीरे एक ठंडे संकल्प में बदलने लगी। मैंने अपने

कंधे पर टंगे बैग के स्ट्रैप को कसकर पकड़ा । उस बैग में सिर्फ मेरी जॉइनिंग लेटर की फाइल ही नहीं थी, बल्कि सालों के संघर्ष, आधी रात तक जली मोमबत्तियों और न जाने कितने अनकहे

सपनों का बोझ था ।
बस स्टैंड की ओर कदम बढ़ाते ही मुझे अहसास हुआ कि आज मेरी ज़िम्मेदारी बदल गई है । मैं अब सिर्फ 'आकाश' नहीं रहा, एक ‘शिक्षक’ बन गया हूँ । अब मुझे सिर्फ खुद के लिए नहीं, अपनी

क्लास के बच्चों के भविष्य के लिए सोचना है । आज बस की स्थिति मुझे कुछ नई सी और बदली हुई प्रतीत हुई । रोज़ाना की वही पुरानी बस, लेकिन मेरी नई ज़िम्मेदारी ने शायद मेरी आँखों का

नज़रिया बदल
दिया था। जैसे
ही मैंने बस के
पायदान पर पैर
रखा और अंदर
चढ़ा , एक अलग ही
दुनिया सामने
थी। बस खचाखच
भरी हुई थी।
वहाँ बैठे
बच्चे आपस में
शोर -शराबा और
बातचीत कर रहे
थे। उनके

बस्तों का बोझ शायद उनकी हँसी से हल्का हो गया था । वहीं दूसरी ओर, कुछ व्यक्ति भीड़ में रास्ता बनाते हुए परिचालक से टिकट खरीद रहे थे । भीड़ के कारण मुझे बैठने की जगह नहीं मिली, तो

मैंने ऊपर लगे
डंडे को कसकर
पकड़ लिया। बस
के हर झटके के
साथ मेरा बैग
मेरे कंधों पर
भारी महसूस हो
रहा था , पर वह
भार बोझ नहीं ,
एक गौरव था।
तभी मेरी नज़र
सामने की सीट
पर बैठे दो
लड़कों पर पड़ी ,

जो शायद चौथी या पांचवीं कक्षा के रहे होंगे । वे एक फटी हुई किताब को बीच में रखकर किसी बात पर उलझ रहे थे। "देख, इसमें लिखा है कि पहाड़ नीले होते हैं, पर कल जब हम गाँव गए थे तो वो तो भूरे

थे ! " छोटे वाले
ने बड़ी
मासूमियत से
कहा ।
दूसरा उसे
समझाते हुए
बोला , "अरे
बुद्धू , वो दूर
से नीले दिखते
हैं , पास जाओ तो
मिट्टी ही होती
है । "
उनकी इस बहस ने
मेरे चेहरे पर

एक अनचाही मुस्कान ला दी । कल तक मैं ऐसी बातों को 'बच्चों का शोर' समझकर अनदेखा कर देता था, लेकिन आज मेरा मन हुआ कि उनके पास जाऊँ और उन्हें
'वायुमंडलीय प्रकीर्णन' के बारे में बताऊँ

। पर फिर मैंने
खुद को रोका
—"धीरज रख
आकाश, अभी
स्कूल का गेट
दूर है।      "
तभी परिचालक
भीड़ को चीरता
हुआ मेरे पास
आया। "कहाँ का
टिकट साहब  ?"
उसने पसीने से
तर-बतर चेहरे
के साथ पूछा।

"आदर्श विद्या मंदिर ," मैंने गर्व से कहा ।
उसने टिकट काटते हुए मुझे ऊपर से नीचे तक देखा , शायद मेरे साफ -सुथरे कपड़े और सलीके से संवारी हुई पहचान उसे समझ आ गई थी ।
"नए मास्टर जी हो ?" उसने धीमे

से पूछा। मेरे
'हाँ ' कहते ही
उसने बस की भीड़
में चिल्लाकर
कहा, "ऐे लड़कों ,
थोड़ा पीछे हो
जाओ, मास्टर जी
को जगह दो !"
बस के परिचालक
ने जैसे ही ज़ोर
से सीटी बजाई ,
मेरा ध्यान
टूटा। "मास्टर
जी, आदर्श

विद्या मंदिर आ
गया !" उसने भीड़
के बीच से
चिल्लाकर कहा ।
जैसे ही मैंने
बस के पायदान
से नीचे जमीन
पर कदम रखा , धूल
का एक गुबार
उड़ा। सामने
स्कूल का वह
पुराना लोहे का
गेट था , जिस पर
बरसों की यादें

और जंग की कुछ
परतें चढ़ी हुई
थीं। गेट के
ऊपर बड़े
अक्षरों में
लिखा था — 'सा
विद्या या
विमुक्तये ' (
शिक्षा वही है
जो मुक्त करे )
।
मैंने एक गहरी
साँस ली । बस
स्टैंड से

स्कूल के गेट
तक की वह पचास
कदम की दूरी
मुझे मीलों
लंबी लग रही थी
। हर कदम के साथ
मेरी धड़कन तेज़
हो रही थी । गेट
पर खड़े चपरासी
ने मुझे ऊपर से
नीचे तक देखा
और मुस्कुराकर
किनारे हट गया
। वह मुस्कान

शायद मेरा
स्वागत की थी ।
जैसे ही मैंने
स्कूल के
बरामदे में कदम
रखा , 'अध्याय 1'
की वह देहलीज़
पूरी तरह पीछे
छूट गई । अब मैं
उस दुनिया में
था जहाँ भविष्य
गढ़ा जाता है ।

अध्याय 2 : कच्ची
मिट्टी और मासूम सवाल ऑफिस में हाजिरी लगाने और प्रिंसिपल

साहब से
औपचारिक
मुलाक़ात के
बाद , मुझे
कक्षा 6-ब का
कार्यभार
सौंपा गया ।
गलियारे से
गुजरते हुए
मेरे जूतों की
आवाज़ गूँज रही
थी । जैसे ही
मैं अपनी क्लास
के दरवाजे पर

पहुँचा, अंदर से आ रहे शोर का सैलाब अचानक थम गया ।
"गुड मॉर्निंग सर!"
एक साथ चालीस बच्चों की आवाज़ ने कमरे की दीवारों को हिला दिया । मैंने
ब्लैकबोर्ड के पास खड़े होकर

उन नन्हीं आँखों में झाँका । वे सब मुझे ऐसे देख रहे थे जैसे मैं कोई अजूबा हूँ । कोई मेरी कमीज के कॉलर को देख रहा था, तो कोई यह अंदाजा लगा रहा था कि यह नया टीचर सख्त होगा या नरम ।

मैंने अभी अपनी फाइल मेज़ पर रखी ही थी कि तभी पीछे की एक बेंच से एक छोटे से बच्चे ने हाथ उठाया । उसकी आँखों में शरारत कम और जिज्ञासा ज़्यादा थी । उसने बड़ी मासूमियत से

पूछा, "सर, आपका नाम क्या है?" मैं
मुस्कुराया और धीरे से
ब्लैकबोर्ड की ओर मुड़ा । चॉक की सफेद छुअन जब काले बोर्ड पर पड़ी, तो एक हल्की सी चरमराहट हुई । मैंने बड़े-बड़े

अक्षरों में
लिखा — 'आकाश' ।

"मेरा नाम आकाश
है ," मैंने उनकी
ओर मुड़ते हुए
कहा।
"आकाश... मतलब
आसमान?"
एक लड़के ने
बीच में ही
चहकते हुए पूछा
।

"हाँ, बिल्कुल वैसा ही," मैंने जवाब दिया, "और पता है, आसमान की सबसे अच्छी बात क्या है? उसमें हर पंछी के लिए जगह होती है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा । मेरी इस क्लास में भी आप सबके सपनों

के लिए वैसी ही जगह होगी ।" अचानक से किसी कोने से एक बच्चे की आवाज आई जैसे ही मैंने पीछे मुड़कर देखा, वैसे ही उस बच्चे ने पूछा, "सर... क्या आप हमें मारेंगे?" उसकी मासूमियत और उस सवाल में

छिपे डर ने
मुझे निशब्द कर
दिया। पूरी
क्लास सन्न थी
। मैंने चॉक
नीचे रखा और
मुस्कुराते
हुए उसके पास
गया ।   "नहीं
दोस्त    , मैं
यहाँ तुम्हें
डराने नहीं        ,
तुम्हारी
कहानियाँ

सुनने आया हूँ
।"
उस एक पल में
क्लास का माहौल
बदल गया।
बच्चों के
चेहरों पर जो
तनाव था , वह
जिज्ञासा में
बदल गया। शुरू
हो गए मासूम
सवालों के
सिलसिले — "सर,
आप कहाँ रहते

हैं ?", "क्या आपको क्रिकेट पसंद है ?", "क्या आप हमें रोज नई कहानी सुनाएंगे ?" सवालों का सिलसिला थमा नहीं था , तभी एक छोटा सा बच्चा , जिसकी शर्ट का एक बटन टूटा हुआ था , अपनी

डेस्क से उठकर
मेरे पास आया।
उसने धीरे से
मेरा हाथ छुआ
और पूछा , "सर,
क्या आप हमें
वो ऊँचे वाले
पहाड़ों की
कहानी
सुनाएंगे , जहाँ
से सूरज निकलता
है ?"
उसकी आँखों में
जो उम्मीद थी ,

उसने मुझे एक पल के लिए पुराने दिनों में पहुँचा दिया । मैंने झुककर उसके कंधे पर हाथ रखा और पूरी क्लास की ओर देखते हुए कहा, "सिर्फ पहाड़ों की नहीं, हम बादलों के पार की और समुद्र

की गहराइयों की भी बातें करेंगे । बस एक वादा चाहिए — हम सब मिलकर एक-दूसरे से सीखेंगे और एक दूसरे को सिखाएंगे ।" पूरी क्लास ने एक स्वर में 'हाँ' कहा, और वह आवाज़ आज स्कूल के गलियारे में

एक संगीत की तरह गूँजी । मैंने अपनी मेज़ पर रखी हाज़िरी वाली रजिस्टर उठाई । मैंने
मुस्कुराते हुए कहा, "चलो, अब मैं देखूँ तो सही कि मेरे इस आसमान में कौन-कौन सा

पक्षी उड़ना
चाह रहा हैं ।          "
जैसे ही मैंने
एक-एक करके नाम
पुकारना शुरू
किया , हर
'प्रेजेंट सर            '
के साथ एक नया
चेहरा और एक नई
उम्मीद मेरे
सामने आती गई ।
हाज़िरी लेने
के बाद मैंने
रजिस्टर बंद

किया और उनसे एक सवाल पूछा, "अच्छा बच्चों, यह बताओ कि बड़े होकर आप क्या बनना चाहते हो?" पूरी क्लास में एक बार फिर उत्साह की लहर दौड़ गई । सबसे आगे बैठे एक गोल-मटोल से लड़के ने हाथ

उठाया और बड़े
गर्व से कहा ,
"सर, मैं आपकी
तरह एक ईमानदार
शिक्षक बनना
चाहता हूँ !"
उसकी बात सुनकर
मेरा सीना गर्व
से चौड़ा हो
गया , लेकिन साथ
ही उस
'ईमानदारी ' शब्द
ने मुझे मेरी
ज़िम्मेदारी

की गहराई का अहसास करा दिया। मैंने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा, "यह सुनकर बहुत खुशी हुई। एक शिक्षक होना दुनिया का सबसे खूबसूरत काम है।"

तभी पीछे से एक लड़की बोली ,

"सर, मैं डॉक्टर बनूँगी!" मैंने उसकी आँखों में देखते हुए कहा, "बहुत अच्छे! पर वादा करो कि डॉक्टर बनके सिर्फ पैसे नहीं कमाओगी, बल्कि उन मरीजों की भी सेवा करोगी जिनके पास इलाज

के लिए पैसे नहीं होते ।" उसने बड़ी संवेदना से सिर हिलाकर 'हाँ' कहा ।
कोई इंजीनियर बनना चाहता था, तो कोई पायलट । बातों-बातों में मैंने उनसे उनकी हॉबी यानी उनके शौक के

बारे में पूछना शुरू किया । किसी को कागज़ की नावें बनाना पसंद था, तो किसी को मिट्टी के खिलौने । किसी को
क्रिकेट का जुनून था, तो कोई छुप-छुपकर कविताएँ लिखता था । मुझे समझ आ रहा था कि यह

क्लास सिर्फ चालीस बच्चों का कमरा नहीं, बल्कि चालीस अलग-अलग सपनों का एक छोटा सा बगीचा है । जिस बगीचे में हर एक पक्षी अपनी उड़ान भरने के लिए तैयार है । तभी मेरी नज़र कोने में बैठे उस एक बच्चे पर

पड़ी , जो पूरी चर्चा के दौरान शांत था। उसने न तो अपना हाथ उठाया और न ही अपना सपना बताया। उसकी खामोशी में एक अजीब सी गहराई थी।

मैंने घड़ी देखी , पहला पीरियड खत्म होने वाला था।

चॉक उठाते हुए मैंने मन ही मन सोचा कि इन बच्चों के सपनों को उड़ान देने के लिए मुझे खुद को पूरी तरह झोंकना होगा । तभी, कोने में बैठे उस शांत बच्चे ने धीरे से अपनी नज़रे उठाईं । उसकी

आँखों में एक
ऐसी नमी थी जो
उसकी उम्र के
हिसाब से बहुत
भारी लग रही थी
। मैं कदमों की
आहट बचाते हुए
उसके करीब जाकर
पूछा , "बेटा ,
तुम्हारा नाम
क्या है ? और तुम
क्या बनना
चाहते हो ?"

पूरी क्लास की नज़रें अब हम पर टिकी थीं । उस बच्चे ने अपनी फटी हुई नोटबुक को कसकर पकड़ा और बहुत धीमी आवाज़ में बोला, "सर, मेरा नाम अभिनव है । मैं... मैं बस इतना चाहता हूँ कि मैं पढ़ सकूँ।"

"बस पढ़ सकु?" मैंने हैरानी से पूछा, "पर तुम तो पढ़ ही रहे हो अभिनव ।" उसने अपनी नीली प्लास्टिक की चप्पल की ओर देखते हुए कहा, "नहीं सर, पिताजी कहते हैं कि अगले महीने से मुझे शहर जाना होगा

। उनके साथ काम पर वो कहते हैं कि स्कूल जाने से पेट नहीं भरता ।"
उसकी बात सुनकर क्लास का वो उत्साह जैसे अचानक थम सा गया। मेरे हाथ में पकड़ा हुआ चॉक का टुकड़ा मेरे अनचाहे दबाव से बीच

में से टूट गया । मुझे समझ आया कि यहाँ चुनौती सिर्फ 'पढ़ाना' नहीं है, बल्कि उस गरीबी और उन हालातों से लड़ना भी है जो इन बच्चों से उनकी मासूमियत छीन रहे थे । मैंने अभिनव के कंधे पर हाथ रखा । वह थोड़ा

हिचकिचाया, पर पीछे नहीं हटा । मैंने पूरी क्लास की तरफ मुड़कर कहा, "बच्चों, आज का पाठ किताबों से नहीं, दिल से है । याद रखना, आसमान कभी छोटा नहीं पड़ता, चाहे जितने भी परिंदे उसमें उड़ें । अभिनव,

तुम स्कूल
आओगे, और तुम
पढ़ोगे भी । यह
वादा मेरा
तुमसे है ।       "
तभी स्कूल की
घंटी गूँजी       —
टन-टन-टन-टन!
पहला पीरियड
खत्म हो चुका
था। बच्चे अपनी
अगली क्लास की
तैयारी करने
लगे , लेकिन

अभिनव अभी भी
मुझे देख रहा
था। उसकी आँखों
में पहली बार
डर की जगह एक
उम्मीद की किरण
दिखी थी।
जैसे ही मैं
क्लास से बाहर
निकला , बरामदे
की ठंडी हवा ने
मेरे चेहरे को
छुआ । मेरे हाथ
चॉक की धूल से

सफेद हो चुके
थे । मैंने उन
हाथों को देखा
और मुस्कुरा
दिया । यह धूल
नहीं थी , यह उस
जिम्मेदारी का
तिलक था जो आज
से मैंने ओढ़ ली
थी ।

# अध्याय **3 :** चॉक की धूल और ब्लैकबोर्ड के पीछे की दुनिया ।

स्टाफ -रूम की ओर बढ़ते हुए मेरे मन में कई विचार चल रहे थे । अभी तो सिर्फ एक पीरियड खत्म हुआ था और मुझे ऐसा लग रहा था

जैसे मैंने एक
पूरी सदी जी ली
हो।   'आदर्श
विद्या मंदिर             '
का गलियारा
पुराना था       ,
दीवारों पर लगी
महापुरुषों की
तस्वीरें
धुंधली पड़
चुकी थीं      ,
लेकिन उन कमरों
से आती बच्चों

की आवाज़ें सजीव थीं । जैसे ही मैंने स्टाफ-रूम का भारी लकड़ी का दरवाज़ा धकेला, अंदर का नज़ारा उम्मीद से बिल्कुल अलग था । वहाँ बच्चों की मासूमियत नहीं, बल्कि अनुभवी शिक्षकों के तजुर्बे

की गूँज थी।
कमरे में चाय
की पत्ती और
पुरानी फाइलों
की एक मिली-
जुली गंध रची-
बसी थी। कोने
की एक बड़ी मेज़
पर तीन-चार
सीनियर टीचर
बैठे थे। मेरे
अंदर कदम रखते
ही बातें अचानक
रुक गईं। सबकी

नज़रें मेरे
चेहरे पर टिक गईं, जैसे वे
मुझे नहीं,
बल्कि मेरी
'नौसिखिया' पहचान को तौल रहे हों ।
"तो आप हैं नए मास्टर जी? आकाश बाबू?" सामने से एक भारी आवाज़ आई । वे अशोक सर थे,

जो पिछले तीस
सालों से इसी
स्कूल में गणित
पढ़ा रहे थे।
उनकी चश्मे के
ऊपर से झांकती
आँखें बहुत कुछ
कह रही थीं ।
"जी सर ,
प्रणाम ," मैंने
झुककर अभिवादन
किया ।
"खुश रहो , खुश
रहो !" उन्होंने

एक कुर्सी की
ओर इशारा करते
हुए कहा , "बैठो
। पहली क्लास
कैसी रही ?
बच्चों ने
परेशान तो नहीं
किया ?"
मैंने अपनी
फाइल मेज़ पर
रखते हुए कहा ,
"नहीं सर , बच्चे
बहुत अच्छे
हैं। बस थोड़ा

भावुक माहौल था ।"
मेरे 'भावुक' शब्द को सुनते ही बगल में बैठी अंजू मैडम ने एक फीकी मुस्कान दी । वे भूगोल पढ़ाती थीं और स्कूल में अपनी सख्ती के लिए जानी जाती थीं । उन्होंने चाय

का घूँट भरते हुए कहा, "अभी नया खून है अशोक साहब! दो- चार महीने जाने दीजिए, जब ये बच्चे चॉक की धूल उड़ाते हुए आपके सिर पर नाचेंगे और सिलेबस का बोझ बढ़ेगा, तब सारी भावुकता उड़ जाएगी ।"

स्टाफ -रूम में
एक हल्का ठहाका
गूँज उठा ।
मुझे थोड़ा अजीब
लगा , पर मैंने
कुछ नहीं कहा ।
अशोक सर ने
अपनी मेज़ पर
रखे एक मोटे
रजिस्टर को
थपथपाते हुए
कहा , "आकाश, इस
ब्लैकबोर्ड के
पीछे की दुनिया

उतनी रंगीन नहीं है जितनी ट्रेनिंग के दौरान किताबों में दिखती है । यहाँ आपको सिर्फ पढ़ाना नहीं है, बल्कि राजनीति, संसाधनों की कमी और इन बच्चों की पारिवारिक

समस्याओं से भी
लड़ना होगा ।     "
तभी अशोक सर ने
अपनी आवाज़ थोड़ी
धीमी की और
बोले   , "सुना है
आज तुमने अभिनव
से बात की    ?
बेटा   , उस लड़के
के पीछे अपना
वक्त खराब मत
करना । उसके
बाप ने उसे
अगले महीने काम

पर भेजने का मन
बना लिया है ।
ऐसे केस यहाँ
रोज आते हैं और
रोज चले जाते
हैं । तुम बस
सिलेबस पूरा
करने पर ध्यान
दो ।  "
उनकी इस सलाह
ने मेरे भीतर
एक अजीब सी
बेचैनी पैदा कर
दी। क्या सच

में एक शिक्षक का काम सिर्फ पन्ने पलटना है? क्या ब्लैकबोर्ड के उस पार की दुनिया इतनी बेरहम है कि हम एक बच्चे को डूबते हुए बस देखते रहें? मैं स्टाफ-रूम से बाहर निकला, तो गलियारे में

उड़ती हुई चॉक की महीन धूल धूप की रोशनी में चमक रही थी । मुझे अहसास हुआ कि यह धूल सिर्फ गंदगी नहीं, बल्कि उन सपनों का हिस्सा है जो अभी अदृश्य हैं, पर वजूद रखते हैं ।

गलियारे के अंत में खड़ा मैं देख रहा था कि कैसे धूप के उन कणों में चॉक की धूल नाच रही थी । अशोक सर की बातें मेरे कानों में अब भी किसी भारी पत्थर की तरह बज रही थीं
— "वक्त खराब मत करना ।" क्या

वाकई किसी की जिंदगी बचाना वक्त की
बर्बादी है? तभी मेरी नज़र दीवार पर टंगी एक पुरानी पेंटिंग पर पड़ी, जो आधी फट चुकी थी । उस पर गांधी जी का एक कथन लिखा था — "शिक्षक समाज का निर्माता

होता है । उस पेंटिंग की धुंधली लिखावट अशोक सर की कड़वी हकीकत के बीच एक युद्ध सा छिड़ गया था । मैंने अपनी जेब से वह मुड़ा हुआ कागज़ निकाला जो अभिनव ने मुझे दिया था । उस पर बनी वह नीली चिड़िया अब मुझे

बेबस नहीं, बल्कि एक चुनौती की तरह लग रही थी । अगर वह चिड़िया उड़ना चाहती है, तो उसे पंख तो देने ही होंगे, चाहे हवा का रुख कितना ही खिलाफ क्यों न हो । गलियारे में बच्चों के शोर की लहर फिर

से उठी । लंच ब्रेक हो चुका था। कुछ बच्चे मैदान की ओर भाग रहे थे, तो कुछ अपनी फटी हुई किताबों में सिर गड़ाए बैठे थे । मैंने गहरी साँस ली और अपने कदम प्रिंसिपल ऑफिस की ओर बढ़ा

दिए। मुझे पता था कि अभिनव को स्कूल में बनाए रखने के लिए मुझे सिर्फ किताबों से नहीं, बल्कि उस कागजी
कार्रवाई और उन नियमों से भी लड़ना होगा जिनके तले गरीब बच्चों के

भविष्य अक्सर
दब जाते हैं ।
मेरे जूतों की
आवाज़ उस सुनसान
गलियारे में अब
पहले से कहीं
अधिक दृढ़ थी।
चॉक की वह धूल
अब मेरे कोट पर
भी जम चुकी थी ,
पर अब वह मुझे
मैली नहीं लग
रही थी । वह तो
उस साधना का

हिस्सा थी जिसे
मैंने आज सुबह
ही  'लकड़ी की
दहलीज ' पार
करते समय
स्वीकार किया
था ।
जैसे ही मैं
मोड़ पर पहुँचा        ,
सामने से अभिनव
आता दिखा ।
उसके हाथ में
पानी की एक
पुरानी बोतल थी

। मुझे देखते ही उसने अपनी नज़रें झुका लीं, जैसे वह डर रहा हो कि कहीं मैंने भी उसकी हकीकत जानकर उससे मुँह तो नहीं मोड़ लिया ।
" अभिनव!" मैंने उसे पुकारा ।
वह हिचकिचाया ।

"कल स्कूल आओगे न?" मैंने मुस्कुराकर पूछा।
उसने धीमे से सिर हिलाया, पर उसकी आँखों में अभी भी वही सवाल था।
मैंने उसके सिर पर हाथ रखा और आगे बढ़ गया। मन ही मन मैंने खुद से कहा —

'अशोक सर सही कह सकते हैं कि यहाँ ऐसे केस रोज़ आते हैं, पर अभिनव मेरे लिए सिर्फ एक केस नहीं, मेरी पहली जीत की उम्मीद है।'

## अध्याय **4:** 'वो खास बच्चा और उसकी अनकही चुनौती'

स्कूल की आखिरी घंटी बज चुकी थी। चारों तरफ बस्तों की चेन बंद होने और बच्चों के शोर का सैलाब उमड़

पड़ा था । हर बच्चा अपने घर की ओर भागने की जल्दी में था, लेकिन अभिनव को मैंने देखा कि वह बहुत ही धीमे कदमों से गेट की ओर बढ़ रहा था । उसके कंधे पर लटका बस्ता थोड़ा झुका हुआ था, शायद किताबों

के बोझ से नहीं, बल्कि उस धुंधले भविष्य के भार से जो उसके घर पर उसका इंतज़ार कर रहा था।
मैंने अपना बैग उठाया और तय किया कि आज मैं अभिनव का पीछा करूँगा । मैं यह देखना चाहता था कि वह

'दुनिया ' कैसी
है , जो एक मासूम
से उसका बचपन
छीनकर उसे शहर
की किसी अँधेरी
दुकान पर भेजने
को बेताब है ।
गलियों के
घुमावदार
रास्तों से
होते हुए मैं
एक ऐसी बस्ती
में पहुँचा
जहाँ गरीबी और

संघर्ष की गंध हवा में साफ़ महसूस की जा सकती थी । अभिनव एक छोटे से टीन की छत वाले कमरे के सामने रुका । वहाँ एक अधेड़ उम्र के
व्यक्ति, जिनके चेहरे पर मेहनत की गहरी लकीरें थीं, जो किसी

पुरानी साइकिल के टायर को ठीक कर रहे थे। "देर क्यों हुई?" उन्होंने बिना सिर उठाए पूछा ।
अभिनव सहम गया, "वो... मास्टर जी ने रोक लिया था।"
मैंने आगे बढ़कर अपनी उपस्थिति

दर्ज कराई, "नमस्ते ।"
उस व्यक्ति ने चौंककर ऊपर देखा । मेरी साफ़-सुथरी शर्ट और कंधे पर टंगा बैग देखकर वे समझ गए कि मैं स्कूल से आया हूँ । उन्होंने अपने ग्रीस से सने हाथों को एक

गंदे कपड़े से पोंछते हुए कहा , "नमस्ते साहब । अभिनव ने कोई शरारत की है क्या ? अगर की है तो अभी इसकी खाल खींचता हूँ , वैसे भी इसे अगले महीने से काम पर ही जाना है । "

उनकी आवाज़ में कड़वाहट नहीं थी, बल्कि एक अजीब सी बेबसी थी । मैंने शांत स्वर में कहा, "नहीं, इसने कोई शरारत नहीं की है । बल्कि यह तो पूरी क्लास में सबसे ज़्यादा प्रभावशाली है । मैं बस आपसे

यह कहने आया हूँ कि अभिनव को स्कूल से मत निकालिए।" अभिनव के पिता, जिनका नाम मंजुशोक था, एक कड़वी मुस्कान के साथ बोले, "साहब, आप लोग किताबी बातें करते हैं । प्रतिभा से पेट नहीं भरता ।

शाम को जब ये
बर्तन खाली
होते हैं , तो
किताबें खाने
को नहीं देतीं
। शहर में मेरा
एक जानकार है ,
वो इसे बिजली
के काम में लगा
देगा । कम से कम
दो पैसे तो हाथ
में आएँगे । "
मंजुशोक जी की
आँखें एक पल के

लिए डबडबाईं, पर फिर
उन्होंने खुद को कठोर कर लिया । "साहब, बड़े सपने हमें शोभा नहीं देते । आप मास्टर हैं, आपका काम पढ़ाना है, आप पढ़ाइए । मेरा बच्चा, मेरी मुसीबत ।"

वहाँ खड़े होकर मुझे अहसास हुआ कि अभिनव की 'अनकही चुनौती' केवल गरीबी नहीं थी, बल्कि उसके पिता का वह टूटा हुआ विश्वास था जिसे समय की मार ने पत्थर बना दिया था । मैं वहाँ से बिना कुछ कहे

वापस मुड़ गया, लेकिन मेरे कदम भारी थे । मुझे पता था कि अभिनव को बचाने के लिए मुझे सिर्फ उसे नहीं, बल्कि उसके पिता को भी जीतना होगा ।
मंजुशोक जी की वह बात
— "किताबें

खाने को नहीं
देतीं "—मेरे
कानों में किसी
गहरे ज़ख्म की
तरह चुभ रही थी
। मैं वहाँ से
भारी कदमों से
निकल तो आया , पर
मेरा मन वहीं
उस टीन की छत के
नीचे छूट गया
था ।
घर लौटते समय
बस की खिड़की

से बाहर अंधेरे को चीरती सड़कों को देखते हुए मैं लगातार यही सोच रहा था । मेरे दिमाग में बार-बार मंजुशोक जी का वह चेहरा घूम रहा था । उनके लिए शिक्षा एक विलासिता थी, जिसे उनके जैसा

गरीब आदमी सहन नहीं कर सकता था । वे गलत नहीं थे, वे बस अपनी
परिस्थितियों के मारे हुए थे । उनके लिए वर्तमान की एक रोटी, भविष्य के एक सुनहरे सपने से कहीं बड़ी थी ।

"किताबों से पैसे नहीं कमाए जाते..." मैंने धीरे से खुद से कहा।
कितनी कड़वी सच्चाई थी उनकी बातों में, और कितनी बड़ी चुनौती थी मेरे लिए । मैं घर पहुँचा, पर माँ के हाथ के बने उन गर्म पराठों

में आज वो
स्वाद नहीं था
। मेरा ध्यान
बार -बार उस
मुड़े हुए कागज़
पर जा रहा था जो
अभिनव ने मुझे
दिया था ।
रात के सन्नाटे
में , टेबल लैंप
की मद्धम रोशनी
में मैंने
डायरी उठाई ।
मैं सोचने लगा

कि आखिर
मंजुशोक जी को कैसे मनाया जाए? उन्हें केवल भाषण देने से काम नहीं चलेगा । मुझे उन्हें यह समझाना होगा कि पढ़ाई सिर्फ डिग्री लेना नहीं है, बल्कि वह हथियार है जो गरीबी की इन

जंजीरों को हमेशा के लिए काट सकता है । "मुझे उन्हें पढ़ाई का महत्व उस भाषा में समझाना होगा जिसे वे समझते हैं," मैंने मन ही मन ठान लिया ।
मुझे उन्हें दिखाना होगा कि अभिनव अगर आज

स्कूल आता है, तो वह केवल मेरा छात्र नहीं बन रहा, बल्कि अपने पूरे परिवार की किस्मत बदलने की नींव रख रहा है । मैंने तय किया कि मैं अभिनव के पिता को पढ़ाई के 'आर्थिक और सामाजिक' दोनों

महत्व
समझाऊंगा । मैं उन्हें
बताऊंगा कि एक पढ़ा-लिखा इंसान केवल नौकरी नहीं करता, वह ठगा नहीं जाता, उसे अपने अधिकारों का पता होता है और वह अपनी मेहनत का सही मोल लेना जानता है।

उस रात मुझे
नींद देर से आई ,
पर मेरा संकल्प
चॉक की उस धूल
की तरह पक्का
हो चुका था , जो
मिटने के बाद
भी अपनी छाप
छोड़ जाती है ।
बिस्तर पर लेटे
हुए भी मेरी
आँखों के सामने
वह दृश्य बार -
बार घूम रहा था

— मंजुशोक जी
के ग्रीस से
सने हाथ और
अभिनव की वह
फटी हुई नोटबुक
। मैंने उठकर
कमरे की खिड़की
खोल दी । बाहर
सन्नाटा था , पर
मेरे अंदर
सवालों का शोर
थमता नहीं था ।
अचानक मेरी नज़र
अपनी मेज़ पर

रखी उस पुरानी
किताब पर पड़ी
जो मेरे कॉलेज
के दिनों की थी
। उस किताब के
पन्नों के बीच
मैंने एक सूखा
हुआ गुलाब रखा
था — वह गुलाब
जो मुझे मेरी
माँ ने तब दिया
था जब मुझे
पहली बार
'स्कॉलरशिप '

मिली थी । उस वक्त हमारे घर के हालात भी बहुत अच्छे नहीं थे। "किताबों से पैसे नहीं कमाए जाते..."
मंजुशोक जी की इस बात का जवाब मेरे पास था, पर क्या वह जवाब उनके खाली पेट के लिए काफी था?

मैंने अंधेरे
में ही अपनी
डायरी खोली और
पेन उठाया और
लिखा — 'अभिनव
का स्कूल =
मंजुशोक जी का
भरोसा '।
रोशनी की एक
पतली सी लकीर
में मैंने
लिखना शुरू
किया — 'शिक्षा
का अर्थ केवल

पैसे कमाना नहीं, बल्कि यह समझना है कि पैसों का सही इस्तेमाल क्या है । एक अनपढ़ मजदूर जितना कमाता है, उसका आधा हिस्सा दवाइयों और अनजाने धोखों में चला जाता है । अभिनव पढ़ जाएगा, तो वह

अपने पिता के उस पसीने का मोल बचा पाएगा ।'
मुझे अहसास हुआ कि मंजुशोक जी को 'भविष्य' दिखाकर नहीं, बल्कि 'वर्तमान' का डर दिखाकर मनाना होगा । मुझे उन्हें यह बताना होगा कि अभिनव को काम

पर भेजना उसे 'मददगार' नहीं, बल्कि 'अपंग' बनाना है । तभी खिड़की से आती हवा के एक झोंके ने मेज़ पर रखे कागजों को बिखेर दिया । मुझे लगा जैसे वे कागज़ नहीं, बल्कि अभिनव के वे सपने थे जो हवा

में उड़ रहे थे ।
मैंने झुककर
एक-एक कागज़
समेटा । उसी
वक्त मैंने खुद
से एक गुप्त
वादा किया —
'अगर कल
मंजुशोक जी
नहीं माने , तो
मैं अभिनव के
स्कूल की
छुट्टी के बाद
खुद उसके पिता

की दुकान पर
जाऊँगा और
अभिनव को वहीं
बैठकर पढ़ाऊँगा
। अगर स्कूल
उसे नहीं मिल
सकता, तो मैं
स्कूल को ही
उसके पास ले
जाऊँगा। '
इस विचार ने
मेरे मन को एक
अजीब सा सुकून
दिया। अब मेरे

पास केवल एक योजना नहीं, बल्कि एक ज़िद थी । एक शिक्षक की ज़िद। अगली सुबह का सूरज मेरे लिए एक नई योजना लेकर आने वाला था । मुझे अभिनव के पिता के उस पत्थर जैसे दिल पर शिक्षा की उम्मीद की

बूंदें गिरानी थीं, भले ही इसमें कितना भी समय क्यों न लगे ।
यह सोचते सोचते मुझे कब नींद आ गई मुझे पता नहीं चला आँख खुलते ही मैंने देखा कि कमरे की दीवारों पर सुबह की पहली रोशनी पढ़ रही

थी । परिंदों के चहकने की आवाज़ आई, और मुझे लगा जैसे वे अभिनव की उस नीली चिड़िया के साथी हों जो अब उड़ने को तैयार थी ।
जब में सुबह तैयार होकर स्कूल जाने के लिए निकला तब मेरे कंधे पर

लटक हुआ बस्ता अब भारी नहीं लग रहा था, क्योंकि अब मैंने सिर्फ बस्ता नहीं, बल्कि एक बच्चे का भविष्य उठाने का संकल्प कर लिया था।

# अध्याय **5 :** स्टाफ -रूम के बंद दरवाज़ों के पीछे

जब मैं स्कूल के गेट से अंदर दाखिल हुआ , तो हवा में वही

पुरानी नमी थी, लेकिन मेरा नज़रिया नया था । मैंने देखा कि चपरासी घंटी बजाने की तैयारी कर रहा था । उस पीतल की घंटी की हर चोट आज मुझे किसी सोए हुए समाज को जगाने वाली पुकार लग रही थी ।

मैं सीधा
स्टाफ    -रूम की
ओर बढ़ा। कल रात
की उस ज़िद ने
मेरे भीतर के
डर को खत्म कर
दिया था। जैसे
ही मैंने
स्टाफ    -रूम का
भारी लकड़ी का
दरवाज़ा धकेला        ,
अंदर का नज़ारा
हमेशा की तरह
था  —  चाय के

कपों की खनक और
कागजों के
पलटने की
आवाज़ें।
अंजू मैडम अपने
रजिस्टर में
कुछ चढ़ा रही
थीं और अशोक सर
चश्मे के पीछे
छिपी अपनी
अनुभवी आँखों
से अखबार पढ़
रहे थे । जैसे
ही मैं अपनी

कुर्सी पर
बैठा , अशोक सर
ने अखबार के
किनारे से मुझे
देखा ।
"क्या हुआ
आकाश? आज चेहरे
पर बड़ी चमक है ।
कोई खजाना मिल
गया क्या ?"
उन्होंने
हल्के मज़ाक के
लहजे में पूछा
।

मैंने अपनी
डायरी मेज़ पर
रखी और दृढ़ता
से कहा , "खजाना
तो नहीं सर , पर
एक रास्ता ज़रूर
मिल गया है ।
मैं कल अभिनव
के घर गया था । "
स्टाफ -रूम में
अचानक सन्नाटा
छा गया । अंजू
मैडम ने अपना
पेन रोका और

मेरी ओर मुड़कर
बोलीं , "गए थे ?
तो क्या हुआ ?
मंज़ुशोक जी ने
फूल मालाओं से
स्वागत किया या
आपको हकीकत का
आईना दिखा दिया
?"
मैंने उनकी बात
को अनसुना करते
हुए कहा , "हकीकत
कड़वी है मैडम ।
वे अभिनव को

अगले महीने काम पर भेज रहे हैं । पर मैंने तय किया है कि अगर वे नहीं माने, तो मैं रोज स्कूल के बाद उसकी दुकान पर जाकर उसे पढ़ाऊँगा । अगर स्कूल उसके पास नहीं आ सकता, तो मैं स्कूल को

ही उसके पास ले जाऊँगा ।"
यह सुनते ही अशोक सर ने अखबार मेज़ पर पटक दिया । "पागलपन है यह आकाश! तुम एक नए शिक्षक हो, तुम्हें
अंदाज़ा नहीं है कि तुम क्या कह रहे हो । तुम सिस्टम के

खिलाफ जा रहे हो। कल को अगर दूसरे बच्चे भी यही मांग करने लगे, तो तुम किस-किस के घर जाओगे? और स्कूल के नियम? क्या
प्रिंसिपल साहब से अनुमति ली है तुमने?" उनकी आवाज़ में चिंता भी थी और

चेतावनी भी ।
स्टाफ -रूम के
बंद दरवाज़ों
के पीछे अक्सर
ऐसी ही आवाज़ें
गूँजती हैं जो
बदलाव को
'पागलपन ' कहती
हैं ।
मैंने खड़े होकर
उनकी आँखों में
देखा और कहा ,
"सर, नियम
इंसानों को

बेहतर बनाने के लिए होते हैं, उन्हें अपंग बनाने के लिए नहीं । अगर एक बच्चा गरीबी की वजह से स्कूल नहीं आ सकता, तो क्या हमारा फर्ज वहीं खत्म हो जाता है?" तभी स्टाफ-रूम का दरवाज़ा तेज़ी से खुला और

चपरासी अंदर आया ।
"आकाश सर, प्रिंसिपल साहब ने अभी के अभी आपको अपने दफ्तर में बुलाया है । चेहरा थोड़ा तमतमाया हुआ है उनका ।"
अंजू मैडम ने दबी मुस्कान के साथ कहा,

"लीजिए, आपकी 'एक्स्ट्रा क्लास' की खबर ऊपर तक पहुँच गई है । अब जाइए और समझाइए उन्हें अपना आदर्शवाद ।" मैंने गहरी साँस ली, अपनी डायरी उठाई और दफ्तर की ओर चल दिया। मुझे पता था कि अब लड़ाई

सिर्फ एक पिता की सोच से नहीं, बल्कि उस सत्ता से भी है जो सिर्फ 'हाजिरी' को शिक्षा मानती थी । जैसे ही मैंने प्रिंसिपल साहब के दफ्तर के बाहर
पहुँचकर
दरवाज़ा
खटखटाया, अंदर

से एक भारी आवाज़ आई, "अंदर आ जाइए।" प्रिंसिपल श्री वास्तव साहब अपनी बड़ी सी मेज़ के पीछे बैठे थे। उनके सामने मेज़ पर एक पुरानी फाइल खुली थी । उन्होंने चश्मा उतारकर मेज़ पर रखा और

सीधे मेरी आँखों में देखा। केबिन के सन्नाटे में दीवार घड़ी की 'टिक-टिक' साफ़ सुनाई दे रही थी ।
"बैठिए आकाश बाबू,"
उन्होंने कुर्सी की ओर इशारा किया ।

"जी सर," मैं संकोच के साथ बैठ गया । "आकाश,"
उन्होंने अपनी आवाज़ को थोड़ा सख्त करते हुए कहा, "मैंने सुना है कि आप स्कूल के बाद कुछ निजी योजनाओं पर काम कर रहे हैं? अभिनव नाम के

बच्चे के घर गए थे आप? और स्टाफ-रूम में कह रहे थे कि आप उसे दुकान पर जाकर पढ़ाएंगे?" मैंने अपनी डायरी को कसकर पकड़ते हुए कहा, "जी सर, वह बच्चा स्कूल छोड़ रहा है । उसके पिता उसे शहर काम पर भेज

रहे हैं । मुझे लगा कि..." "लगने से स्कूल नहीं चलते!" उन्होंने बीच में ही मुझे टोक दिया । "देखिए, आपकी भावनाएँ अच्छी हैं, लेकिन आप भूल रहे हैं कि आप एक सरकारी सहायता
प्राप्त स्कूल

के कर्मचारी
हैं। अगर आप
किसी बच्चे के
घर जाकर उसे
व्यक्तिगत रूप
से पढ़ाते हैं ,
तो यह
अनुशासनहीनता
मानी जा सकती
है। कल को कोई
दूसरा शिक्षक
इसका गलत फायदा
उठा सकता है या
अभिभावक हम पर

दबाव डाल सकते
हैं ।      "
उनके तर्कों
में      'नियम ' थे ,
पर 'संवेदना       '
नहीं थी ।
"सर," मैंने
अपनी आवाज़ को
शांत पर दृढ़
रखा , "अगर
नियमों की वजह
से एक होनहार
बच्चा मजदूर बन
जाए , तो क्या वे

नियम सही हैं? मैं सिर्फ उसे पढ़ाना नहीं चाहता, मैं उसके पिता को यह यकीन दिलाना चाहता हूँ कि स्कूल उसके बच्चे का भविष्य बदल सकता है। क्या स्कूल प्रशासन इस मामले में उसकी थोड़ी मदद

नहीं कर सकता? उसकी फीस या किताबों का इंतज़ाम?" श्रीवास्तव साहब ने एक लंबी साँस ली और पीछे कुर्सी से टेक लगा ली । "आकाश, हमारे पास फंड की कमी है । और वैसे भी, हम एक बच्चे के लिए नियम

नहीं बदल सकते
। आप अपना
ध्यान सिर्फ
अपनी क्लास पर
लगाइए । सिलेबस
बहुत पीछे है ।           "
दफ्तर से बाहर
निकलते समय
मेरा मन बोझिल
था । स्टाफ       -रूम
की खिड़की से
अंजू मैडम और
अशोक सर मुझे
देख रहे थे ।

उनकी नज़रों में एक तरह की 'जीत' का भाव था, जैसे वे कहना चाह रहे हों—

"हमने
तो पहले ही कहा था ।"
मैं अपनी मेज़ पर वापस आया और चुपचाप अपनी डायरी खोली । प्रिंसिपल साहब ने 'नियम' दिखाए थे,

मंजुशोक जी ने
'गरीबी ' दिखाई
थी और
सहकर्मियों ने
'तजुर्बा '
दिखाया था।
लेकिन इन सबके
बीच उस 'अभिनव'
की उम्मीद
धुंधली पड़ रही
थी।
मैंने मेज़ पर
रखे चॉक के
डिब्बे को देखा

। सफेद चॉक की धूल मेरी उंगलियों पर चिपक गई थी । मैंने महसूस किया कि ये दीवारें और ये बंद दरवाज़े शायद मुझे रोकने की कोशिश करेंगे, लेकिन मेरी ज़िद का रास्ता अब

गलियों से होकर
जाता था।
अशोक सर पास आए
और धीमे से
बोले , "हार मान
लो आकाश। ये
दुनिया इतनी
जल्दी नहीं
बदलती। "
मैंने उनकी ओर
देखा और बिना
कुछ कहे अपनी
किताबें समेट
लीं। आज की

क्लास खत्म हो चुकी थी, लेकिन मेरी असल परीक्षा अब शुरू होने वाली थी । मैंने तय कर लिया था कि अगर प्रिंसिपल साहब 'अनुमति' नहीं देंगे, तो मैं 'शिक्षक' के तौर पर नहीं, बल्कि एक 'दोस्त' के तौर

पर अभिनव के
पास जाऊँगा।
शाम की धूप जब
स्कूल के मैदान
पर पड़ रही थी ,
मैंने अपना बैग
उठाया और स्कूल
के मुख्य गेट
से बाहर निकल
गया । मेरा
रास्ता स्टाफ -
रूम की
आरामदायक
कुर्सियों की

ओर नहीं, बल्कि मंजुशोक जी की उस धुएँ से भरी दुकान की ओर था ।

अध्याय 6 : वो मोड़, जहाँ गुरु शिष्य बन बैठा । स्कूल के गेट से बाहर निकलते ही शहर का शोर मेरे कानों से

टकराया , लेकिन
मेरे दिमाग में
अभी भी दफ्तर
का वह सन्नाटा
और श्रीवास्तव
साहब की बातें
गूँज रही थीं ।
धूल और धुएँ के
बीच से होता
हुआ मैं उसी
तंग गली में
पहुँचा जहाँ
मंजुशोक जी की
दुकान थी ।

दुकान क्या थी        ,
बस एक टिन का
शेड था जिसके
नीचे पुरानी
साइकिलें     , फटे
हुए टायर और
बिजली के खुले
तार बिखरे पड़े
थे । अभिनव
वहाँ एक कोने
में बैठा एक
पुरानी मोटर के
तार सुलझाने की
कोशिश कर रहा

था । उसके
चेहरे पर कालिख
लगी थी , पर उसकी
आँखों में अभी
भी वही चमक थी
जो ब्लैकबोर्ड
की ओर देखते
समय हुआ करती
थी ।
मंजुशोक जी ने
मुझे देखते ही
हाथ में पकड़ा
पन्ना नीचे रख
दिया ।

"अरे मास्टर साहब! आप यहाँ?" उनके स्वर में आश्चर्य भी था और थोड़ी घबराहट भी । "मैंने तो कहा था न कि अब यह स्कूल नहीं आएगा ।"
मैंने
मुस्कुराते हुए अपना बैग एक तरफ रखा और वहीं पड़ी एक

लकड़ी की पेटी पर बैठ गया । "मंजुशोक जी, मैंने कब कहा कि मैं इसे स्कूल ले जाने आया हूँ? आज तो मैं खुद इसके पास आया हूँ । अगर यह दुकान पर काम सीखेगा, तो मैं यहीं इसे पढ़ाऊँगा ।"

मंजुशोक जी ठिठक गए । उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि एक मास्टर साहब सूट-बूट छोड़कर उनकी तेल और ग्रीस से भरी दुकान पर बैठ जाएंगे । "साहब, यहाँ गंदगी है, बैठने की जगह नहीं..."

उन्होंने
हिचकिचाते हुए
कहा।
"जहाँ ज्ञान हो ,
वहाँ गंदगी
नहीं होती ,"
मैंने कहा और
अभिनव को पास
बुलाया।
"अभिनव, आज हम
किताबों से
नहीं , इस मोटर
से पढ़ेंगे। "

अभिनव के चेहरे पर एक चकित कर देने वाली मुस्कान खिल गई । मैंने उसे समझाया कि वह जो तार जोड़ रहा है, उसमें विज्ञान के कौन से नियम काम करते हैं । मैंने उसे 'प्रतिरोध' और 'प्रवाह' के

बारे में बताया — पर किताबी भाषा में नहीं, बल्कि उन तारों की भाषा में जिन्हें वह छू रहा था ।
काम करते-करते अभिनव ने मुझसे एक सवाल पूछा, "सर, क्या बड़े लोग भी कभी हार मानते हैं?"

उस छोटे से
बच्चे के सवाल
ने मुझे निशब्द
कर दिया । मुझे
श्रीवास्तव
साहब का चेहरा
याद आ गया।
मैंने उसे
देखते हुए कहा ,
"हार वो मानते
हैं अभिनव , जो
कोशिश करना छोड़
देते हैं । जब
तक तुम यह तार

जोड़ना चाह रहे हो, तुम हारे नहीं हो ।" उस दिन मुझे अहसास हुआ कि मैं उसे पढ़ा नहीं रहा था, बल्कि वह मुझे 'धैर्य' का पाठ पढ़ा रहा था । जिस लगन से वह उस टूटी हुई मोटर को ठीक कर रहा था, वह किसी

महान
वैज्ञानिक से कम नहीं थी । शाम ढलने तक मंजुशोक जी भी चुपचाप कोने में खड़े हमारी बातें सुन रहे थे ।
जब मैं जाने के लिए उठा, तो मंजुशोक जी ने आगे बढ़कर मेरे हाथ पकड़ लिए ।

उनके हाथों में ग्रीस लगा था, जो मेरे हाथों पर भी छप गया । "मास्टर साहब," वे रुँधे हुए गले से बोले, "आज तक किसी ने यह नहीं बताया कि जो काम मैं करता हूँ, उसमें भी पढ़ाई छिपी है । मुझे

लगा पढ़ना मतलब सिर्फ अफ़सर बनना है ।"
उस एक पल में मुझे लगा कि मैंने आधी जंग जीत ली है। चॉक की धूल से सने मेरे हाथ अब ग्रीस से काले हो चुके थे, पर मुझे अपनी ज़िंदगी में पहली बार एक

'सच्चा शिक्षक '
होने का गर्व
महसूस हो रहा
था। अभिनव ने
मुझे गेट तक
छोड़ा और धीरे
से कहा , "सर, कल
फिर आएंगे न ?"
मैंने उसके सिर
पर हाथ रखा और
अंधेरे की ओर
बढ़ गया। आज मैं
शिक्षक बनकर
गया था , पर

लौटते समय खुद को एक 'शिष्य' महसूस कर रहा था, जिसने एक नन्हे बच्चे से संघर्ष की नई परिभाषा सीखी थी ।
दुकान से निकलकर जब मैं वापस घर के लिए बस में बैठा, तो मेरे मन में एक अजीब सा संतोष

था । पर यह
संतोष ज़्यादा
देर तक टिक
नहीं सका । शहर
की व्यस्त सड़क
पर बस एक बड़े
ट्रैफिक
सिग्नल पर रुकी
।
जैसे ही मैंने
खिड़की से बाहर
देखा , मेरा दिल
बैठ गया ।

सड़क के किनारे ,
ठीक सिग्नल के
नीचे , मैंने
अभिनव की ही
उम्र के कुछ
बच्चों को देखा
। उनमें से एक
बच्चा , जिसके
पैर नंगे थे , वह
झुक कर कचरे के
ढेर से कूड़ा
उठा रहा था ।
उसकी पीठ पर
लदा हुआ वह

भारी बोरा उसके कद से भी बड़ा लग रहा था । दूसरी ओर, एक छोटा लड़का गाड़ियों के बीच भाग-भागकर रुमाल और सामान बेच रहा था । उसकी आँखों में कोई सपना नहीं, बल्कि सिर्फ अगली गाड़ी के

रुकने का इंतज़ार था । तभी, मेरी खिड़की के ठीक नीचे एक आहट हुई । मैंने नज़र घुमाकर देखा — एक बच्चा हाथ में गंदा कपड़ा लिए एक महंगी कार का शीशा साफ़ कर रहा था । वह बड़ी उम्मीद से कार

के अंदर बैठे व्यक्ति की ओर देख रहा था, पर जैसे ही सिग्नल हरा हुआ, वह कार उसे धुएँ के गुबार में छोड़कर आगे बढ़ गई । वह बच्चा वहीं खड़ा अपनी खाली हथेली को देखता रह गया । उन बच्चों को देखकर मेरे ज़हन

में एक सवाल
बिजली की तरह
दौड़ा —"क्या
मैं सिर्फ एक
अभिनव को बचाकर
अपनी
ज़िम्मेदारी
पूरी कर
पाऊँगा ?"
सिग्नल पर खड़ा
वह हर बच्चा एक
'अभिनव' था।
किसी के हाथ
में झाड़ू था ,

किसी के हाथ
में बोरा , और
किसी के हाथ
में मजबूरी ।
वे चॉक की उस
धूल से मीलों
दूर थे , जो उनके
भविष्य को
सँवार सकती थी
। बस आगे बढ़ गई ,
पर मेरी नज़रें
वहीं उन नन्हे
हाथों पर टिकी
रह गईं जो कूड़े

में अपना बचपन खो रहे थे । मुझे अहसास हुआ कि अभिनव की दुकान पर मिली जीत तो सिर्फ एक शुरुआत थी । असली चुनौती तो उन हज़ारों बच्चों को वापस स्कूल लाना है जो समाज की इस भीड़ में गुम हो चुके हैं । वे

बच्चे केवल सामान नहीं बेच रहे थे, बल्कि अपनी मासूमियत की नीलामी कर रहे थे । मैंने अपने ग्रीस से सने हाथों को देखा । ये हाथ अब सिर्फ एक बच्चे को पढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि इस पूरी

व्यवस्था को झकझोरने के लिए तैयार थे । घर पहुँचते- पहुँचते मेरा संकल्प और भी गहरा हो गया । उस रात जब मैं बिस्तर पर लेटा, तो मेरी आँखों के सामने बार-बार वही तीन चेहरे घूम रहे थे—कूड़ा

उठाता बच्चा ,
सामान बेचता
लड़का और शीशा
साफ़ करता वो
मासूम । मैंने
अपनी डायरी में
एक आखिरी लाइन
लिखी :
"एक शिक्षक का
क्लासरूम केवल
चार दीवारों तक
सीमित नहीं
होता ; जब तक सड़क
पर खड़ा आखिरी

बच्चा 'कूड़ा' छोड़कर 'कलम' नहीं थाम लेता, तब तक मेरा सबक अधूरा है।"

अध्याय 7 : 'बारिश की बूंदें और बचपन की यादें। जैसे ही मैं सुबह उठा, तो मैंने देखा कि बादलों की घटा ने सूरज की किरणों को छुपा लिया था । खिड़की के बाहर आसमान स्लेटी रंग का हो चुका था । मैंने नाश्ता किया ही था

कि देखा वर्षा शुरू हो गई है — रिमझिम नहीं, बल्कि मूसलाधार । इतने में मेरे फोन की घंटी बजी और मुझे पता चला कि भारी बारिश के कारण आज स्कूल का अवकाश है । 'अवकाश'... इस शब्द को सुनते ही मेरे चेहरे पर एक स्वाभाविक

मुस्कान आ गई । मुझे मेरे बचपन के वो मीठे दिन याद आ गए, जब स्कूल की छुट्टी की खबर सुनकर मैं खुशी से झूम उठता था । हम भाई-बहन मिलकर खिड़की पर बैठते थे, कागज़ की नावें बनाते थे और इंतज़ार करते थे कि कब माँ रसोई से गरम-गरम पकौड़े

लेकर आएँगी । हमारे लिए छुट्टी का मतलब था — पढ़ाई से आज़ादी और खेल का अनगिनत समय । लेकिन, जैसे ही मेरी नज़र कोने में रखे अपने बैग पर पड़ी, मेरा मन अचानक भारी हो गया ।
"क्या अभिनव के लिए भी आज छुट्टी

है?" मैंने खुद से पूछा ।
मेरे लिए छुट्टी का मतलब था आराम, लेकिन अभिनव जैसे बच्चों के लिए स्कूल का न होना अक्सर एक दूसरी तरह की मज़दूरी का संकेत होता है । जिस दिन स्कूल बंद होता है, उस दिन उन पर घर के काम का या दुकान पर ज़्यादा

वक्त देने का बोझ बढ़ जाता है । मेरे लिए जो बारिश 'रोमांच' थी, अभिनव के लिए शायद वही बारिश उसकी झोपड़ी की टपकती छत या दुकान पर सामान को भीगने से बचाने की जद्दोजहद थी । मैं चैन से घर पर नहीं बैठ सका । मैंने अपनी छतरी उठाई और उस

मूसलाधार बारिश में ही अभिनव की बस्ती की ओर चल दिया। गलियाँ पानी से भरी हुई थीं और कीचड़ में पैर धँस रहे थे। जब मैं उसकी दुकान के पास पहुँचा , तो जो देखा उसने मेरा कलेजा चीर दिया। अभिनव छुट्टी का आनंद नहीं ले रहा था। वह भीगते हुए

एक भारी तिरपाल को खींचकर साइकिलों पर ढकने की कोशिश कर रहा था । उसके पिता, मंजुशोक जी, घुटनों तक भरे पानी में खड़े होकर नाली साफ़ कर रहे थे ताकि दुकान के अंदर पानी न घुसे । अभिनव का चेहरा पीला पड़ा हुआ था और वह ठंड से काँप रहा था ।

"अभिनव!" मैंने आवाज़ दी ।
उसने मुड़कर देखा । उसकी आँखों में वह चमक नहीं थी जो मेरी आँखों में बचपन की
छुट्टियों के दौरान हुआ करती थी । उसकी आँखों में तो 'ज़िंदा रहने' की थकान थी ।
"सर? आप यहाँ? आज तो छुट्टी है न?"

उसने लड़खड़ाती आवाज़ में पूछा । "हाँ अभिनव, स्कूल की छुट्टी है, पर एक शिक्षक की नहीं," मैंने उसके सिर पर अपनी छतरी तानते हुए कहा । उस पल मुझे अहसास हुआ कि हम कितने अलग संसारों में रहते हैं । जहाँ एक संसार बारिश में कविताएँ

लिखता है, वहीं दूसरा संसार उस बारिश में डूबने से बचने की कोशिश करता है । मेरा बचपन और अभिनव का बचपन — एक ही मिट्टी से बने थे, पर एक पर ममता की छाँव थी और दूसरे पर ज़िम्मेदारियों की कड़ी धूप, यहाँ तक कि बारिश में भी ।

मैंने उसके हाथ से वह गीली तिरपाल ली और उसकी मदद करने लगा । उस दिन मैंने कोई किताब नहीं खोली, पर प्रकृति और गरीबी के उस मेल ने मुझे जीवन का वह अध्याय पढ़ा दिया जो किसी महाविद्यालय में नहीं पढ़ाया जाता । तिरपाल बाँधने के बाद, हम दोनों

दुकान के छोटे से सूखे कोने में जा खड़े हुए । बाहर बारिश अब एक सुरीली ताल में बदल चुकी थी । अभिनव के होंठ ठंड से नीले पड़ रहे थे । मैंने अपना थर्मल फ्लास्क निकाला और उसमें से गर्म चाय ढक्कन में भरकर उसे थमा दी ।

चाय की भाप उसके चेहरे को छू रही थी । उसने एक घूँट लिया और धीरे से बोला, "सर, आपको छुट्टी में घर पर सोना चाहिए था । आप यहाँ भीगने क्यों आए?" मैंने उसकी आँखों में झाँका और कहा, "अभिनव, मुझे लगा शायद आज तुम अकेले नाव चला रहे होगे,

तो सोचा मैं भी
अपनी एक नाव ले
आऊँ। "
वह फीका सा
मुस्कुराया और
नीचे जमीन पर बहते
हुए गंदे पानी की
धार को देखने लगा
। फिर उसने एक ऐसी
बात कही जिसने
मुझे भीतर तक हिला
दिया।
"सर, जब बारिश होती
है , तो मुझे नाव

चलाने का मन नहीं करता । मुझे डर लगता है कि कहीं मेरी झोपड़ी की छत गिर न जाए या पिताजी की ये पुरानी साइकिलें खराब न हो जाएं । स्कूल में जब पढ़ता हूँ, तो भूल जाता हूँ कि मैं गरीब हूँ । पर ये छुट्टियाँ... ये छुट्टियाँ मुझे

याद दिला देती हैं कि मैं कौन हूँ ।" उसकी बातों में एक ऐसा बोझ था जो एक दस-बारह साल के बच्चे के कंधों के लिए बहुत भारी था । मैंने उसके गीले बालों को सहलाया और कहा, "यही तो पढ़ाई की ताकत है अभिनव । आज तुम इस बारिश से डर रहे हो, पर एक दिन तुम

इसी बारिश का आनंद लोगे । उस दिन तुम्हारे पास पक्की छत भी होगी और एक मज़बूत भविष्य भी ।" बारिश धीरे-धीरे कम होने लगी थी । बादलों के बीच से सूरज की एक धुंधली सी किरण झाँकने लगी, जैसे वह भी देखना चाहती हो कि इस छोटी सी दुकान

में क्या पक रहा है ।
मैंने जाने के लिए अपनी छतरी समेटी । तभी अभिनव दौड़कर अंदर गया और एक पुराना, जंग लगा हुआ पेचकस लेकर आया ।
"सर, ये रख लीजिए । आपने मेरी मदद की, तो मेरे पास देने के लिए बस यही है ।"

वह पेचकस नहीं था, वह उसका 'सम्मान' था । मैंने उसे बड़े जतन से अपने बैग में रखा, जैसे वह कोई गोल्ड मेडल हो । घर लौटते समय मुझे अहसास हुआ कि आज की इस 'छुट्टी' ने मुझे आकाश से ज़मीन पर उतार दिया था । बचपन की वो मासूम यादें अब एक

गंभीर संकल्प में बदल चुकी थीं । सड़क पर जमा पानी अब कम हो रहा था, और मुझे लग रहा था कि शायद अभिनव के जीवन से भी डर की ये लहरें धीरे- धीरे कम होने लगेंगी ।
घर लौटते समय, बस की खिड़की पर पड़ती बारिश की उन आखिरी बूंदों को

देखकर मुझे अपनी माँ की एक बात याद आई। वे अक्सर कहती थीं , "बेटा , मिट्टी तभी महकती है जब वह पूरी तरह भीग जाती है। " आज मुझे उस बात का असली मतलब समझ आया। अभिनव की गरीबी , उसकी बेबसी और उसके पिता का रूखापन —ये सब उस सूखी मिट्टी की

तरह थे, जिन पर आज मेरे संकल्प की बारिश ने असर करना शुरू कर दिया था । मैंने अपने बैग में हाथ डालकर उस पुराने जंग लगे पेचकस को छुआ जो अभिनव ने मुझे दिया था । वह लोहे का एक ठंडा टुकड़ा मात्र नहीं था, बल्कि अभिनव का मुझ पर किया गया

वह भरोसा था जिसे अब मैं किसी भी कीमत पर टूटने नहीं दे सकता था । अचानक मुझे अहसास हुआ कि आज की इस 'छुट्टी' ने मुझे क्लासरूम के घंटों से भी ज़्यादा सिखाया है । मैंने सीखा कि एक शिक्षक के लिए सबसे बड़ी जीत सिलेबस पूरा करना

नहीं, बल्कि उस बच्चे के चेहरे पर मुस्कान लाना है जिसने मुस्कुराना छोड़ दिया हो । सूरज अब बादलों की ओट से पूरी तरह बाहर आ चुका था । आसमान में एक हल्का सा इंद्रधनुष दिखाई देने लगा था — सात रंगों की वह लकीर जो उम्मीद का पुल

लग रही थी । मैंने मन ही मन तय किया कि कल जब स्कूल की घंटी बजेगी, तो मैं क्लास में एक नया इंसान बनकर कदम रखूँगा । अब मुझे सिर्फ ब्लैकबोर्ड पर लिखना नहीं था, बल्कि अभिनव जैसे हज़ारों बच्चों के लिए एक ऐसी दुनिया बनानी थी जहाँ

बारिश का मतलब छत गिरना नहीं, बल्कि नाव चलाना हो । मैंने अपनी डायरी निकाली और बहते हुए पानी की आवाज़ के बीच एक आख़िरी पंक्ति लिखी: "आज की बारिश ने मेरे बचपन की धूल झाड़ दी और मुझे यह अहसास दिलाया कि असली 'अवकाश' काम से छुट्टी

लेना नहीं, बल्कि किसी की जिंदगी के बोझ को थोड़ा हल्का कर देना होता है ।"
रात के खाने पर माँ ने जब पकौड़े परोसे, तो मैंने पहली बार उन्हें बिना किसी शिकायत के खाया । माँ ने मेरी आँखों में देखा और मुस्कुरा दीं, जैसे वे समझ

गई हों कि उनका बेटा अब सिर्फ एक सरकारी कर्मचारी नहीं, बल्कि एक 'शिक्षक' बन चुका है ।

# अध्याय 8 : आखिरी घंटी और घर की वो दौड़।

बारिश के बाद की सुबह कुछ अलग ही ताज़गी लेकर आई थी । स्कूल के मैदान

की मिट्टी अभी
भी गीली थी और
घास पर ओस की
बूंदें सूरज की
रोशनी में
मोतियों की तरह
चमक रही थीं ।
जैसे ही स्कूल
की पहली घंटी
बजी , बच्चों का
शोर गलियारों
में फिर से
गूँज उठा।
लेकिन आज मेरे

लिए वह शोर सिर्फ शोर नहीं, बल्कि जीवन की लय थी । मैं क्लास 6-ब में दाखिल हुआ । आज मेरा ध्यान सीधा पीछे की उस बेंच पर गया जहाँ अभिनव बैठा था । उसके चेहरे पर कल की थकान तो थी,

लेकिन मेरी आँखों से आँखें मिलते ही उसके होंठों पर एक बहुत ही
सूक्ष्म
मुस्कान आई — शायद हम दोनों के बीच वह डर दूर हो गया था | "गुड मॉर्निंग क्लास!" मैंने पूरे उत्साह से कहा ।

आज मुझे कोई
भारी पाठ नहीं
पढ़ाना था।
मैंने
ब्लैकबोर्ड पर
एक बड़ा सा 'घड़ी '
का चित्र बनाया
।
"बच्चों , आज हम
समय के बारे
में पढ़ेंगे ,"
मैंने कहा । "पर
सिर्फ घड़ी
देखना नहीं ,

बल्कि समय की कीमत समझना । समय वह रेत है जो हाथ से फिसल गई तो दोबारा नहीं आती ।" पूरी क्लास शांत थी । मैंने देखा कि अशोक सर क्लास के दरवाज़े से गुज़र रहे थे और एक पल के लिए रुककर मुझे

पढ़ाते हुए
देखने लगे।
उनकी नज़रों में
अब भी वही
पुरानी आशंका
थी , पर मैंने
अपनी लय नहीं
तोड़ी ।
समय बीतता गया
और स्कूल की
गतिविधियाँ
अपनी रफ़्तार
पकड़ती रहीं ।
लेकिन मेरा मन

बार-बार उस 'आखरी घंटी' की ओर जा रहा था । यह अध्याय सिर्फ स्कूल के समय का नहीं था, बल्कि उस 'दौड़' का था जो छुट्टी के बाद शुरू होती थी । जैसे ही दोपहर की आखरी घंटी— टन-टन-टन-टन! बजी, पूरी

क्लास में एक
हलचल सी मच गई ।
बच्चे अपना
बस्ता कंधे पर
लादकर बाहर की
ओर ऐसे भागे
जैसे किसी कैद
से आज़ाद हुए
हों ।
"सर, मैं जाऊँ ?"
अभिनव ने अपना
फटा हुआ बस्ता
उठाते हुए पूछा
। उसकी आँखों

में एक अजीब सी जल्दी थी । "हाँ अभिनव, जाओ । लेकिन याद रखना, कल की पढ़ाई का काम पूरा होना चाहिए," मैंने कहा ।
मैंने खिड़की से देखा, अभिनव गेट से बाहर निकलते ही अपनी पूरी ताकत से

दौड़ पड़ा । वह घर नहीं जा रहा था, वह अपनी दूसरी 'शिफ्ट' के लिए दौड़ रहा था — मंजुशोक जी की दुकान पर । वह दौड़ सिर्फ एक बच्चे की दौड़ नहीं थी, वह गरीबी और वक्त के बीच की एक जंग थी । उसे जल्दी पहुँचना

था ताकि वह अपने पिता का हाथ बँटा सके और शायद, शाम को ढलते सूरज की रोशनी में मेरी दी हुई उस नई नोटबुक पर दो अक्षर और लिख सके ।
मैंने अपना बैग उठाया और खाली होती क्लास को देखा । दीवारों

पर चॉक की धूल अब भी उड़ रही थी । मुझे अहसास हुआ कि इन बच्चों के लिए स्कूल का खत्म होना सुकून नहीं, बल्कि एक नए संघर्ष की शुरुआत है । मैं भी तेज़ी से बाहर निकला । आज मुझे भी घर जाने की जल्दी

थी, लेकिन मेरी मंज़िल घर नहीं, बल्कि उस रास्ते पर खड़ा होना था जहाँ से अभिनव दौड़कर गुज़रता था । मैं देखना चाहता था कि उस नन्हे के कदमों में कितनी जान बाकी है ।
जब मैं बस स्टैंड पहुँचा,

तो मैंने देखा कि अभिनव गलियों के मोड़ पर ओझल हो रहा था । उसके छोटे- छोटे कदम धूल उड़ा रहे थे । वह 'घर की वो दौड़' नहीं थी, वह अपने वजूद को बचाने की दौड़ थी ।
मैंने देखा कि बाकी बच्चे

रास्ते में
रुककर बर्फ के
गोले वाले को
घेर रहे थे , कोई
किसी की साइकिल
पर पीछे बैठकर
हंसी -मज़ाक कर
रहा था , तो कोई
रुककर सड़क
किनारे
क्रिकेट के
स्कोर पूछ रहा
था। लेकिन
अभिनव? उसका

पूरा ध्यान सिर्फ सामने के रास्ते पर था । उसके जूते घिसे हुए थे, पर उसकी रफ़्तार किसी घोडे से कम नहीं थी । मैंने तय किया कि मैं आज बस से नहीं, बल्कि पैदल ही उसके पीछे-पीझे चलूँगा । मैं

देखना चाहता था कि यह 'दौड़' उसे कहाँ ले जाकर थकाती है ।
गलियों के घुमावदार रास्तों पर चलते हुए मेरी सांसें फूलने लगी थीं, पर अभिनव नहीं रुका । वह एक ऐसी बस्ती के

मोड़ पर मुड़ा जहाँ सड़क के नाम पर सिर्फ कीचड़ और गड्ढे थे । वहाँ पहुँचते ही उसने अपना बस्ता कंधे से उतारकर हाथ में ले लिया ताकि वह नीचे की गंदगी से न सने ।

जैसे ही वह
अपनी दुकान के
पास पहुँचा ,
उसने अपनी
रफ़्तार धीमी
नहीं की। दूर
से ही मंजुशोक
जी की आवाज़
गूँजी , "देर कर
दी ! देख कितने
टायर जमा हो गए
हैं , ग्राहक कब
से खड़ा है !"

अभिनव ने बिना
एक शब्द कहे ,
वहीं दुकान के
कोने में अपना
बस्ता फेंका।
उसने अपनी
स्कूल की शर्ट
उतारी और नीचे
पहनी हुई वही
पुरानी , ग्रीस
से सनी बनियान
में आ गया।
अगले ही पल , वह
हाथ में पाना

लिए एक साइकिल के पहिए के पास घुटनों के बल बैठा था । मेरी आँखें भर आईं । अभी दस मिनट पहले जो बच्चा मेरी क्लास में 'समय की कीमत' पढ़ रहा था, वह अब समय के साथ कुश्ती लड़ रहा था । उसके

चेहरे पर अब वह मासूमियत नहीं थी, बल्कि एक ऐसा सयानापन आ गया था जो उम्र से पहले ही उस पर थोप दिया गया था ।
मैं थोड़ी दूर एक खंभे की ओट में खड़ा यह सब देख रहा था । तभी मेरी नज़र अशोक सर पर

पड़ी , जो शायद
वहीं पास के
बाज़ार से
गुज़र रहे थे ।
उन्होंने भी
अभिनव को उस
हाल में देखा ।
उन्होंने मेरी
ओर रुख किया और
धीमी आवाज़ में
बोले , "देख लिया
आकाश? यही वह
दौड़ है जो
स्कूल की घंटी

बजते ही शुरू हो जाती है । तुम इसे क्लास में तो जीत सकते हो, पर इस सड़क पर कैसे जिताओगे?" अशोक सर की आवाज़ में आज व्यंग्य नहीं, बल्कि एक गहरी दर्द थी । "सर," मैंने अपनी

मुट्ठियाँ भींचते हुए कहा, "अगर वह इतनी मेहनत अपनी रोज़ी- रोटी के लिए कर सकता है, तो सोचिए अगर इसे सही दिशा मिले तो यह कहाँ पहुँचेगा? यह दौड़ इसे थकाएगी नहीं सर, यह इसे और

मज़बूत बनाएगी । बस हमें इसके जूतों के नीचे की ज़मीन को पक्का करना है ।"
अशोक सर ने कुछ नहीं कहा, बस मेरा कंधा थपथपाया और आगे बढ़ गए। शायद आज उन्हें भी अपने तीस साल पुराने वो सपने

याद आ गए जो सिस्टम की धूल में कहीं दब गए थे।
सूरज ढलने को था। दुकान पर जलता हुआ वह पीला बल्ब अब अभिनव के पसीने से चमकते माथे पर रोशनी डाल रहा था। मैंने अपना बैग कसकर पकड़ा और घर की

ओर मुड़ गया । आज की उस 'दौड़' ने मुझे सिखा दिया था कि एक शिक्षक का असली इम्तिहान क्लासरूम के भीतर नहीं, बल्कि उस वक्त शुरू होता है जब आखिरी घंटी बजती है ।
घर पहुँचते- पहुँचते मैंने

अपनी डायरी में लिखा:
"छुट्टी की घंटी बच्चों के लिए आज़ादी का पैगाम होती है, पर अभिनव जैसे बच्चों के लिए वह एक दूसरी जेल का दरवाज़ा खोलती है । मेरा काम उसे उस दूसरी जेल

[illegible]
[illegible]"

# अध्याय 9 : सफ़र अभी बाकी है ।

आज भी मैं रोज की तरह अभिनव की दुकान पर उसे । पढाने गया , लेकिन आज कुछ खास था । मंजुशोक जी दुकान के एक कोने में खड़े होकर चुपचाप यह

सब देख रहे थे उन्होंने देखा कि कैसे शहर के एक शिक्षित परिवार का लड़का, उनके बच्चे के लिए न केवल अपनी सुख-सुविधाएँ छोड़कर इस धूल भरी दुकान पर बैठता है, बल्कि उसके साथ उसी की भाषा

में मेहनत भी
करता है ।
उनके मन के
भीतर एक उथल -
पुथल शुरू हो
गई थी ।
उन्होंने हाथ
में पकड़ा हुआ
पुराना कपड़ा
नीचे रख दिया
और अभिनव की ओर
देखा , जो मेरे
साथ एक गणित का
सवाल हल करने

की कोशिश कर रहा था । मंजुशोक जी को अपनी वह बात याद आई — "किताबें पेट नहीं भरतीं ।" पर आज उन्हें अहसास हुआ कि अगर एक शिक्षक उनके बच्चे के भविष्य के लिए इतनी मेहनत कर सकता है, तो एक

पिता होने के
नाते क्या उनका
फर्ज़ सिर्फ पेट
भरना ही है       ?
"साहब ,"
मंजुशोक जी की
भारी आवाज़ ने
हमारा ध्यान
खींचा।
मैं और अभिनव
दोनों ने सिर
उठाकर देखा ।
मंजुशोक जी के
चेहरे के कठोर

भाव अब नरम पड़ चुके थे । उन्होंने आगे बढ़कर अभिनव के हाथ से वह पाना ले लिया और बोले, "तू हाथ धो ले बेटा । अब तू सिर्फ पढ़ाई पे ध्यान दे । ये टायरों का बोझ और ग्रीस की कालिख मेरे हाथों के लिए

ही ठीक है । जब तक मेरे शरीर में जान है , मैं दुगनी मेहनत करूँगा , पर तुझे शहर नहीं जाने दूँगा । "

अभिनव की आँखों में जो चमक उस पल आई, वह किसी मेडल से कम नहीं थी । उसने दौड़कर अपने पिता को गले

लगा लिया । मंजुशोक जी ने मुझे देखते हुए हाथ जोड़े और कहा, "मास्टर साहब, आपने मेरी आँखें खोल दीं । मैंने गरीबी को अपनी ढाल बना लिया था, पर आपने दिखाया कि पढ़ाई ही वह ढाल है जो हमें इस गरीबी

से बाहर
निकालेगी।      "
उस शाम दुकान
के उस मद्धम
उजाले में मुझे
लगा जैसे मेरा
'शिक्षक    ' होना
सफल हो गया। पर
जैसे ही मैं
वहाँ से निकला        ,
मुझे गलियों
में और भी कई
बच्चे दिखे          —
कोई ढाबे पर

बर्तन धो रहा था, तो कोई कचरा बीन रहा था । मुझे अहसास हुआ कि एक 'अभिनव' का स्कूल वापस मिल गया है, पर सफ़र अभी बहुत लंबा है । शहर की उन अंधेरी गलियों में न जाने कितने और अभिनव अपनी

पहचान खो रहे
थे ।
मैंने आकाश की
ओर देखा। चाँद
निकल आया था और
उसकी चांदनी उस
बस्ती की टूटी
छतों पर भी
उतनी ही बराबरी
से पड़ रही थी
जितनी शहर के
आलीशान बंगलों
पर । मैंने
अपने कदम तेज

कर दिए । कल स्कूल में मुझे एक नई योजना बनानी थी — सिर्फ एक क्लास के लिए नहीं, बल्कि उन हर हाथों के लिए जो कलम पकड़ने के हकदार थे । मेरे पीछे अभिनव की दुकान की लाइट जल रही थी, जो अब मुझे

किसी अंधेरी गुफा का रास्ता नहीं, बल्कि एक मशाल की तरह लग रही थी ।
अगले कुछ हफ्ते मेरे लिए किसी तपस्या से कम नहीं थे । मंजुशोक जी ने अपना वादा निभाया था । अब अभिनव स्कूल के बाद दुकान पर

काम नहीं करता था, बल्कि दुकान के एक कोने में रखे ऊँचे स्टूल पर बैठकर अपनी नई नोटबुक में हिसाब के सवाल और विज्ञान के चित्र बनाता था । मंजुशोक जी अब उसे काम के लिए नहीं टोकते थे, बल्कि बीच-

बीच में उसे
चाय का प्याला
पकड़ाते हुए
उसकी पीठ थपथपा
देते थे ।
लेकिन मेरी
चुनौती अभी
खत्म नहीं हुई
थी । स्टाफ -रूम
में अब भी वही
पुरानी जकड़न थी
। श्रीवास्तव
साहब के नियम
और अशोक सर का

तजुर्बा अभी भी 'बदलाव' को संदेह की नज़र से देख रहे थे । एक सुबह, मैंने स्कूल के नोटिस बोर्ड पर एक विज्ञापन चिपकाया — "शाम की
पाठशाला: उन बच्चों के लिए जो दिन में

स्कूल नहीं आ सकते ।"
स्टाफ-रूम में जैसे तूफान आ गया । अंजू मैडम ने तीखी आवाज़ में कहा, "आकाश, क्या तुम स्कूल को धर्मशाला बनाना चाहते हो? प्रशासन इसकी इज़ाज़त कभी नहीं देगा ।"

मैंने शांत भाव से जवाब दिया, "मैडम, प्रशासन नियमों से चलता है और समाज भावनाओं से । अगर हम स्कूल के गेट उन बच्चों के लिए नहीं खोल सकते जो दिन भर सड़कों पर काम करते हैं, तो हमारे शिक्षित

होने का क्या
फायदा ?"
तभी पीछे से एक
भारी आवाज़ आई ।
वह अशोक सर थे ।
उन्होंने अपना
चश्मा साफ़ किया
और सबके सामने
आकर बोले , "आकाश
अकेला नहीं है
। इस शाम की
पाठशाला में
पहली गणित की

क्लास मैं
लूँगा ।        "
पूरे स्टाफ          -रूम
में सन्नाटा छा
गया । अशोक सर   ,
जो कभी मुझे
'पागल ' कह रहे
थे  , आज मेरे साथ
खड़े थे । शायद
अभिनव के पिता
का बदलना अशोक
सर के भीतर के
उस सोए हुए

शिक्षक को जगा
गया था ।
शाम को जब सूरज
डूबने लगा और
स्कूल की
आधिकारिक
छुट्टी हो गई ,
तब एक अद्भुत
नज़ारा देखने को
मिला । स्कूल
के उसी पुराने
लोहे के गेट से
वही बच्चे अंदर
आ रहे थे

जिन्हें मैंने ट्रैफिक
सिग्नल पर कूड़ा उठाते और सामान बेचते देखा था । उनके चेहरे गंदे थे, पर आँखों में वही जिज्ञासा थी जो किसी भी बच्चे में होनी चाहिए ।
अभिनव अपनी नई नोटबुक लेकर

सबसे आगे खड़ा था । वह अब केवल एक छात्र नहीं था, वह उन सबके लिए एक 'लीडर' बन चुका था । जैसे ही मैंने ब्लैकबोर्ड पर चॉक से पहला अक्षर लिखा, मुझे अहसास हुआ कि सफ़र अभी बहुत लंबा है । यह तो बस एक

शुरुआत थी।
सड़कों पर अभी
भी हज़ारों
बच्चे थे ,
गलियों में अभी
भी गरीबी थी ,
लेकिन अब मेरे
पास एक टीम थी
और एक उम्मीद।
रात के अंधेरे
में स्कूल की
वो इमारत अब
सिर्फ ईंट -
पत्थर का ढांचा

नहीं लग रही थी ,
वह एक रोशनी का
मीनार लग रही
थी जो शहर के
अंधेरे को
चुनौती दे रही
थी। मैंने
अपनी खिड़की से
बाहर देखा —
आसमान में तारे
चमक रहे थे।
मुझे लगा जैसे
वे तारे वही
बच्चे हैं

जिन्हें बस
थोड़े से उजाले
की तलाश थी ।
तभी पीछे से
किसी की आहट
हुई । मैंने
मुड़कर देखा ,
श्रीवास्तव
साहब अपने ऑफिस
से बाहर निकल
रहे थे । उनके
हाथ में वही
पुरानी फाइल थी
और चेहरे पर एक

गंभीर सोच । वे कुछ देर तक उस 'शाम की
पाठशाला' की ओर देखते रहे जहाँ अशोक सर बच्चों को पहाड़े याद करवा रहे थे । वे मेरे पास आए और मेरे कंधे पर हाथ रखा । "आकाश,"
उन्होंने धीमे से कहा, "मैंने

नियमों की
किताबों में
बहुत कुछ पढ़ा
था , पर आज तुमने
मुझे वो पढ़ाया
जो किसी किताब
में नहीं था ।
स्कूल फंड्स का
इंतज़ाम मैं
देख लूँगा , तुम
बस इन तारों की
चमक कम मत होने
देना । "

शाम की पाठशाला ख़तम हुई और मैं अपने घर की और निकल गया । उनकी बाते मेरे मन के आखिरी बोझ को उत्तर देती है । मुझे अहसास हुआ कि जब नीयत साफ़ हो, तो पत्थर भी रास्ता देने लगते हैं ।

उस रात जब मैं
घर पहुँचा , तो
माँ मेरा
इंतज़ार कर रही
थीं । उन्होंने
मेरे कोट पर
लगी चॉक की
सफ़ेद धूल और
जूतों पर लगी
उस बस्ती की
मिट्टी को देखा
। उन्होंने कुछ
नहीं पूछा , बस
मेरी आँखों में

देखकर
मुस्कुरा दीं ।
वह मुस्कान
किसी आशीर्वाद
से कम नहीं थी ।
मैंने अपनी
मेज़ पर रखा वह
पुराना सूखा
हुआ गुलाब और
अभिनव का दिया
हुआ वह जंग लगा
पेचकस एक साथ
रखे । एक मेरा
अतीत था , जिसने

मुझे यहाँ तक
पहुँचाया , और
एक मेरा
वर्तमान था , जो
मुझे भविष्य की
ओर ले जा रहा था
।
सफ़र अभी थमा
नहीं था । कल
फिर वही सुबह
होगी , वही
चुनौतियाँ
होंगी और वही
गलियाँ । पर अब

मेरे पास डर नहीं था । अब मुझे पता था कि चॉक का एक छोटा सा टुकड़ा दुनिया की सबसे बड़ी ताकत बन सकता है । मैंने अपनी डायरी का पन्ना पलटा और महसूस किया कि अब मुझे 'लिखने' की ज़रूरत कम है,

क्योंकि अब मेरी कहानी उन बच्चों की आँखों में लिखी जा रही थी। रात गहरी हो चुकी थी, पर मेरी आँखों में नींद नहीं, एक नई सुबह का सपना था। एक ऐसी सुबह, जहाँ किसी भी बच्चे को स्कूल और

रोटी के बीच
चुनाव न करना
पड़े ।

उपसंहार : ब्लैकबोर्ड के उस पार — अब मैं शिक्षक हूँ

आज पूरे दस साल
बीत गए हैं ।
जब मैं स्कूल
के उसी पुराने
लोहे के गेट से
अंदर दाखिल
होता हूँ , तो अब
जंग की वह
आवाज़ नहीं
सुनाई देती ।
गेट अब नए
रंगों से चमक
रहा है । स्कूल
की इमारत अब

केवल एक 'ईंट-पत्थर का ढांचा' नहीं रही; अब इसकी दीवारों पर महापुरुषों की तस्वीरों के साथ-साथ उन बच्चों की पेंटिंग्स भी लगी हैं,
जिन्हें कभी समाज ने 'कूड़ा उठाने वाला'

कहकर दुत्कार
दिया था ।
मेरे बाल अब
थोड़े सफेद हो
चुके हैं और
चाल में वह
पुरानी तेज़ी
नहीं , पर आँखों
की चमक आज भी
वैसी ही है।
मैं स्टाफ -रूम
के पास से
गुज़रता हूँ ,
तो देखता हूँ

कि 'अशोक सर' की कुर्सी पर अब एक नया युवा शिक्षक बैठा है, जो शायद मेरी ही तरह किसी बड़े बदलाव का सपना देख रहा है । अशोक सर अब रिटायर हो चुके हैं, पर उनकी वह बात आज भी मेरे कानों में

गूँजती है —
"दुनिया इतनी
जल्दी नहीं
बदलती आकाश। "
मैं मुस्कुरा
देता हूँ।
शायद दुनिया
नहीं बदली , पर
उन सैकड़ों
बच्चों की
'दुनिया ' ज़रूर
बदल गई जो शाम
की उसी
'पाठशाला ' से

निकले थे । श्रीवास्तव साहब अब इस दुनिया में नहीं हैं, पर स्कूल के लाइब्रेरी ब्लॉक का नाम उनके सम्मान में रखा गया है, क्योंकि अपने आखिरी दिनों में उन्होंने अपना सारा संचय

इसी स्कूल के
नाम कर दिया था
।
मैं अपनी क्लास
की ओर बढ़ता
हूँ ।
ब्लैकबोर्ड अब
डिजिटल हो चुके
हैं , लेकिन
मेरे हाथों को
आज भी उस लकड़ी
के बोर्ड और
चॉक की धूल की
आदत है । जैसे

ही मैं क्लास
में पहुँचता
हूँ , सभी बच्चे
सम्मान में
खड़े हो जाते
हैं । उन
चेहरों में
मुझे आज भी वही
जिज्ञासा
दिखती है जो
कभी अभिनव की
आँखों में थी।
क्लास खत्म
होने के बाद ,

चपरासी — जो अब
बूढ़ा हो चुका
है — वह मेरे
पास एक
लिफ़ाफ़ा लेकर
आता है ।
"साहब , किसी
बड़े शहर से
पत्र आया है ,"
वह मुस्कुराते
हुए कहता है ।
मैं कांपते
हाथों से
लिफ़ाफ़ा

खोलता हूँ । अंदर एक छोटा सा नोट है और साथ में एक अखबार की कटिंग। अखबार की हेडलाइन है — "शहर के नए डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने संभाला
कार्यभार; गरीबों की शिक्षा को

बनाया
प्राथमिकता।          "
फोटो में एक
नौजवान सूट
पहने खड़ा है          ,
जिसके चेहरे की
मुस्कान आज भी
वही है    , जो
मंजुशोक जी की
उस धुएँ से भरी
दुकान पर हुआ
करती थी। पत्र
में केवल एक ही
लाइन लिखी है      :

"सर, आज जब मैं
अपनी बड़ी सी
मेज़ के पीछे
बैठता हूँ , तो
मुझे वही लकड़ी
का स्टूल याद
आता है जहाँ
बैठकर आपने
मुझे
'प्रतिरोध' और
'प्रवाह' का पाठ
पढ़ाया था ।
आपने मुझे
सिर्फ किताबी

ज्ञान नहीं दिया, आपने मुझे खुद से लड़ना सिखाया । आज भी मेरे ऑफिस की मेज़ पर वह 'जंग लगा पेचकस' रखा है, जो मुझे याद दिलाता है कि मेरी जड़ें कहाँ हैं । अब मैं भी आपकी तरह एक 'शिक्षक'

हूँ, बस मेरा क्लासरूम थोड़ा बड़ा हो गया है।
— आपका अभिनव ।"
मेरी आँखों से आँसू छलक पड़ते हैं और सीधे उस लिफ़ाफ़े पर गिरते हैं । मुझे अहसास होता है कि ब्लैकबोर्ड के

उस पार जो
दुनिया मैंने
देखी थी , वह आज
हकीकत बन चुकी
है ।
मैं खिड़की के
पास जाकर बाहर
देखता हूँ।
स्कूल के मैदान
में बच्चे खेल
रहे हैं। बारिश
फिर से शुरू हो
गई है , पर अब
मुझे डर नहीं

लगता। अब मुझे पता है कि इन बच्चों के पास पक्की छतें भी हैं और मज़बूत इरादे भी । मैं चॉक का एक टुकड़ा उठाता हूँ और खाली ब्लैकबोर्ड पर लिखता हूँ — "शिक्षा केवल नौकरी पाना नहीं, बल्कि

इंसान को
'इंसान ' बनाना
है। "
मैंने अपनी
डायरी बंद कर
दी। आज मेरी
कहानी का आखिरी
पन्ना भर चुका
था। मैं अब
सिर्फ एक
'सरकारी
कर्मचारी ' नहीं
था। मैं अब
'आकाश' था , एक

ऐसा आकाश जिसके
नीचे हज़ारों
उम्मीदें आज
चैन से सो सकती
थीं।
हाँ , अब मैं
गर्व से कह
सकता हूँ ... अब
मैं एक शिक्षक
हूँ।